ओ३म्

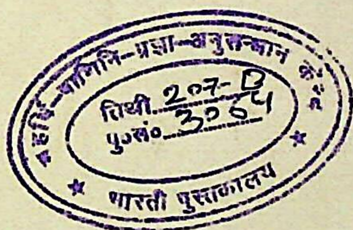
उत्थारा नारी

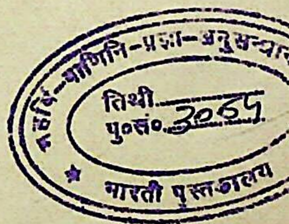
[नारी—एक चिरन्तन सत्य स्वरूप]



प्रज्ञा देवी











ओ३म्

उरुधारा नारी

[नारी—एक चिरन्तन सत्य स्वरूप]

लेखिका—
प्रज्ञा देवी

प्रकाशक—
पाणिनि कन्या महाविद्यालय
तुलसीपुर, वाराणसी-५

प्रथम संस्करण—वि. सं० २०३४ १९७७
द्वितीय परिवर्धित संस्करण—श्रावण १९७९
वि. सं० २०३६
तृतीय परिवर्धित संस्करण—२९-५-१९८५
गंगा दशहरा, २०४२

मूल्य- ५)

मुद्रक—
विष्णु प्रेस
कतुआपुरा, वाराणसी

दो शब्द

अपने इन लेखों के संग्रह को इतनी शीघ्रता में पुस्तकाकार रूप देने की बात मैंने कभी नहीं सोची थी। मेरे मस्तिष्क में तो नारी के सम्बन्ध में चारों वेदों में आये सभी विषयों को वृहद् रूप में क्रमशः उद्धृत कर देने की बहुत दिनों से इच्छा थी, जिससे युगों युगों से उत्पीड़ित-उपेक्षित नारी के सत्यस्वरूप पर प्रकाश पड़ता किन्तु प्रसंगतः इसका लघुरूप ही प्रस्तुत करना पड़ रहा है।

समाज में नारी की अवस्थिति कभी इतनी दीन-हीन भी बन सकती है यह वेद में कहे नारी के महिमामय स्वरूप को देखकर तो विश्वास ही नहीं होता परन्तु विश्वास के लिये धर्म के ठेकेदारों के वे वचन जो उसे चिता में जीवित जलने तक के लिये (सती-प्रथा) बाध्य एवं देवदासी[1] बनने के लिए विवश कर सकते थे तथा उसकी सामाजिक स्थिति या पारिवारिक महत्त्व को बिल्कुल समाप्त कर सकते थे, विद्यमान हैं ही अतः साश्चर्य सब कुछ मानना पड़ता है। मैं चाहती थी कि ऐसी पुस्तक वृहद् रूप वाली तैयार हो जो कि "स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्" का तगड़ा उत्तर हो। स्त्रियों को सभी विद्यायें भली-भाँति पढ़नी चाहियें यह केवल ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के

---

१. जिन नवयुवति किशोरियों को उनके अभिभावक प्रस्तर मूर्तियों के नाम से पण्डे पुजारियों को सौंप जाते थे जहाँ इन हतभाग्या स्त्रियों को आयु पर्यन्त नारकीय विलासिता का जीवन बिताना पड़ता था उन्हें देवदासी = देवों की दासी के नाम से पुकारा जाता था। गुजरात का प्रसिद्ध सोमनाथ का मन्दिर जिसका महमूद गजनवी के हाथों पतन हुआ था, अकेले इस मन्दिर में ४०० स्त्रियाँ इस प्रकार की थीं जिनका काम शिवमूर्ति के समक्ष केवल नाचना-गाना तथा पुरुषों की विलासिता का साधन बनना था। वाममार्गियों की सभी घृणित कुत्सित विधियाँ इन स्त्रियों को करनी पड़ती थीं॥ द्र० के. एम. मुन्शी कृत— 'जय सोमनाथ'॥

माध्यम से नहीं वरन् शाश्वत सत्य वेद से यह बात सिद्ध एवं प्रमाणित हो, ऐसी मेरी आकांक्षा थी जिसका संक्षिप्त रूप ही यह पुस्तिका कही जा सकती है। यथावसर इसको वृहद् रूप देने की योजना मेरे विचार में है।

वेद के सम्बन्ध में सामान्यतः एक धारणा लोगों में है कि वेदों में नारी के लिये कुछ संकुचित एवं सीमित विचारधारायें तथा मर्यादारेखायें हैं जो नारी के सर्वाङ्गीण विकास एवं तत्कालीन युग के अनुसार प्रतिकूल तथा असंगत हैं। वस्तुतः वेद के विषय में ये अत्यन्त ही भ्रान्तिमूलक विचार हैं, वेद में कहीं भी ऐसी बात नहीं आती कि नारी केवल घर की बन्दिनी है और उसे पढ़ने पढ़ाने का कोई अधिकार नहीं है। यजु० १०।२६-२७ के मन्त्र जिनका देवता 'राजपत्नी' है इनमें बताया है कि राजाओं की स्त्रियाँ न्यायविद्या एवं राजनीति की दूसरों को शिक्षा दें जिस प्रकार चक्रवर्ती राजा न्याय करे उसी प्रकार राजपत्नी स्त्रियाँ स्त्रियों का न्याय यथोचित करें[१]। इसी प्रकार ऋ० ४।२२।७ में भी कहा है कि स्त्रियाँ स्त्रियों का न्याय करें ऐसा करने पर दृढ़ राजधर्म का प्रबन्ध होता है[२]। यजु० १२।६५ में कहा है कि हे निर्ऋते ! सत्याचरणों से युक्त स्त्रि ! तू न्यायाधीश बनकर दुष्टों को दण्ड दे एवं निरपराधियों का सत्कार कर[३]। यजु० २६।५० में नारी को 'अश्वाजनी' शब्द से सम्बोधित किया गया है[४] जिसका अर्थ है—

१. स्योनाऽसि सुषदाऽसि क्षत्रस्य योनिरसि।
स्योनामासीद सुषदामासीद क्षत्रस्य योनिमासीद॥
निषसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्यास्वा। साम्राज्याय सुक्रतुः॥
२. अत्राह ते हरिवस्ता उ देवीरवोभिरिन्द्र स्तवन्त स्वसारः।
यत् सीमनु प्रमुचो बद्बधाना दीर्घामनु प्रसितिं स्यन्दयध्यै॥
३. यं ते देवी निर्ऋतिराबबन्ध पाशं ग्रीवास्वविचृत्यम्।
तं ते विष्याम्यायुषो न मध्यादथैतं पितुमद्धि प्रसूतः।
नमो भूत्यै येदं चकार॥
४. आ जंघन्ति सान्वेषां जघनाँ उप जिघ्नते।
अश्वाजनि प्रचेतसोऽश्वान्त्समत्सु चोदय॥

घोड़ों को प्रशिक्षित करने वाली स्त्री अर्थात् युद्ध विद्या को जानने वाली। यजु० १२।६४ में नारी को 'घोरा'=दुष्टों को भयभीत करने हारी[1] बताया गया है। ऋ० ७।३४।३ में नारियों को शूरों के समान उत्साहिनी बनने को भी कहा गया है[2]। ऋ० ६।६१।१ में स्त्री को अनादिभूत वेद-विद्या को जानने वाली कहा है[3]। ऋ० ६।६१।३ एवं ७।३१।२ में बताया है कि स्त्रियाँ भूगर्भादि विद्या को जानने वाली बनें[4]। यजु० १२।५३ में कहा है कि पुत्रियों को सम्पूर्ण विद्या भली प्रकार प्राप्त करनी चाहिये[5]। यजु० ३०।१५ में कहा है कि स्त्री को काल गणन के सूक्ष्म अवयवों का भली प्रकार ज्ञान होना चाहिये[6] अर्थात् स्त्री को ज्योतिर्विद् होना चाहिये। ऋ० १०।११४।३ में स्त्री को 'चतुष्कपर्दा' शब्द से सम्बोधित किया है जिसका अर्थ है धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष रूपी जीवन के चार तत्त्वों को जानने वाली अथवा चतुष्कोण वेदी की निर्माण प्रक्रिया यानी यज्ञ के मर्म को

---

१. यस्यास्ते घोर ऽआसंजुहोम्येषां बन्धानामवसर्जनाय।
यां त्वा जनो भूमिरिति प्रमन्दते निर्ऋतिं त्वाहं परिवेद विश्वतः॥

२. आपश्चिदस्मै पिन्वन्त पृथ्वीर्वृत्रेषु शूरा मंसन्त उग्राः।

३. इयमददाद् रभसमृणच्युतं दिवोदासं वध्र्यश्वाय दाशुषे।
या शश्वन्तमाचखादावसं पणिं ता ते दात्राणि तविषा सरस्वति॥

४. सरस्वति देवनिदो निबर्हय प्रजां विश्वस्य बृसयस्य मायिनः।
उत क्षितिभ्योऽवनीरविन्दो विषमेभ्यो अस्रवो वाजिनीवति॥
शंसेदुक्थं सुदानव उत द्युक्षं यथा नरः। चकृमा सत्यराधसे॥

५. चिदसि तया देवतया ऽङ्गिरस्वत् ध्रुवा सीद परिचिदसि तया देवतयाऽङ्गिरस्वद् ध्रुवा सीद॥

६. यमाय यमसूमथर्वभ्योऽवतोकाँ संवत्सराय पर्यायिणीं परिवत्सरायाविजातामिदावत्सरायातीत्वरीमिद्वत्सरायातिष्कद्वरीं वत्सराविजर्जराँ संवत्सराय पलिक्नीमृभुभ्योऽजिनसन्धँ साध्येभ्यश्चर्मम्नम्॥

समझने वाली कहा है[1]। ऋ० १०।१४६ वें सूक्त का देवता ही 'अरण्यानी' है जिसका अर्थ है संन्यासाश्रम को प्राप्त करने वाली विदुषी स्त्री[2]।

इन सभी उदाहरणों से यह बात स्पष्ट होती है कि ऐसी कोई विद्या या चीज नहीं है जो स्त्री के लिये वर्ज्य या गोप्य हो, जिसके कारण स्त्री समाज में निम्न एवं अपने अधिकारों की प्राप्ति के लिये कातर हो। माता सन्तान को योग्य एवं सुशिक्षित बनाये इस आशय को कहने वाले अनेकों मन्त्र इस बात को प्रतिपादित करते हैं कि नारी का बहुज्ञ एवं बहुश्रुत होना परम आवश्यक है।

नारी के सम्बन्ध में वेद में संकुचित विचारधारायें हैं इस सन्दर्भ में यह भी बात उठाई जाती है कि नारी आर्थिक दृष्टिकोण से परवश एवं शारीरिक दृष्टि से कोमलांगिनी होने के कारण अपने अधिकारों से वंचित तथा पुरुष का संरक्षण प्राप्त करने के लिये विवश है अर्थात् पति-पत्नी के स्नेह सम्बन्धों में नारी का आर्थिक दृष्टिकोण से परमुखापेक्षिता वाला पक्ष स्त्री को पुरुष की ओर झुकने को अधिक बाध्य करता है एवं सुरक्षा की आवश्यकता होती है अतः यह विचार करना चाहिये कि दाम्पत्य जीवन का आधार 'स्नेह-सूत्र' है या सुरक्षा एवं पोषण की भावना। इन प्रश्नों का उत्तर बहुत स्पष्ट है—सत्यविद्या से विभूषित स्त्री आर्थिक दृष्टि से परमुखापेक्षिणी कदापि नहीं है यह तो स्त्री एवं पुरुष के विशेष उत्तर-दायित्व हैं जिनमें पुरुष का कार्य जीविकोपार्जन प्रधान है एवं स्त्री का कार्य गृह-संचालन प्रधान है। कुछ नैसर्गिक क्षमतायें भी इनकी इस प्रकार हैं इसमें यदि उसे परमुखापेक्षिणी माना जाये तो दोनों ही एक दूसरे के परमुखापेक्षी हैं। योग्य सन्तति का निर्माण करने वाली सुशिक्षिता विदुषी माता का तो सम्पूर्ण राष्ट्र ऋणी होता है। वह घर में बैठी हुई भी ऐसी

---

१. चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा घृतप्रतीका वयुनानि वस्ते।
तस्यां सुपर्णा वृषणा निषेदतुर्यत्र देवा दधिरे भागधेयम्॥

२. अरण्यान्यरण्यान्यसौ या प्रेव नश्यसि............॥ इसी प्रकार १-६ तक मन्त्र।

अदम्य शक्ति की निर्मात्री है कि जिस पर सम्पूर्ण राष्ट्र को गौरव होता है ऐसी नारी परमुखापेक्षिणी कैसे ?

जहाँ तक शारीरिक संरक्षण का प्रश्न है किसी भी प्रेम की परिणति संरक्षण कही जा सकती है। प्रेम संरक्षण एवं समर्पण की विधि का ही रूपान्तर है। किसी को किसी से स्नेह होता है तभी वह उसके सम्बन्ध में चिन्तन करता है, एवं संरक्षण का हाथ बढ़ाता है अतः प्रेम एवं संरक्षण के भाव को विलगाव की दृष्टि से देखना ही गलत होगा। पति-पत्नी से प्रेम करते हुये पति यदि पत्नी को संरक्षण प्रदान करता है तो यह बिल्कुल स्वाभाविक प्रक्रियाहै जिससे पति अपने में गौरव की अनुभूति करता है, तो पत्नी समर्पण का आनन्द प्राप्त करती है इसलिए विवाह संस्कार के समय में वर कहता है "पत्नी त्वमसि धर्मणा, ममेयमस्तु पोष्या"[1] प्रेम होते हुये भी जहाँ संरक्षण का भाव नहीं वह वास्तव में प्रेम ही नहीं पशुता है, यौनक्षुधा को तृप्त करने का एक जरिया है। इस प्रकार प्रेम एवं संरक्षण एक दूसरे के पूरक हैं अतः स्त्री कभी भी आश्रित न रही है न रह सकती है। वैसे नारी के अन्दर भी इतना साहस होना ही चाहिये कि वह किसी भी अवस्था में अपने आपको अरक्षित न माने, यदि नारी के अन्दर सच्चरित्रता, दृढ़ता एवं प्रबल आत्मबल हो तो ऐसी नारी का कोई बाल-बांका नहीं कर सकता और वह अपने आत्मतेज के कारण विश्वभर को चुनौती दे सकती है।

वैदिक न्याय जो सबके लिए सर्वोपरि है उसमें नारी एवं पुरुष के सम्बन्धों का समीकरण सदैव एक जैसा है और रहेगा क्योंकि मानवीय स्वभाव एवं मूल्य सदैव के लिये एक जैसे हैं। जिस समय मण्डप पर कोई पिता अपनी कन्या का हाथ एक अनजान वर के हाथ में पकड़ाता है उस समय वह अपनी लाड़ली फूल सी बच्ची के लिये वर से असीम स्नेह एवं संरक्षण दोनों की अपेक्षा करता है इसके अभाव में वह अपनी पुत्रिका को उसे नहीं सौंपना चाहता। आज का क्लिशित गार्हस्थ्य-जीवन वैदिक मर्यादाओं की अवहेलना का ही परिणाम है, यह कहा जा सकता है।

---

१. अथर्व० १४।१।५१-५२

आज स्त्री को तुच्छ या गर्ह्य स्वभाव वाली मानने वाले लोग-बड़े जोर शोर से अपनी पुष्टि में ये ऋग्वेद का प्रमाण दिया करते हैं—

पुरूरवो मा मृथा मा प्र पप्तो मा त्वा वृकासो अशिवास उक्षन् ।
न वै स्त्रैणानि सख्यानि सन्ति सालावृकाणां हृदयान्येता ।।

ऋ० १० । ९५ । १५

उनका कहना है कि इस मन्त्र में स्त्रियों को भेड़िये जैसी क्रूर हृदय वाली बताया है । वस्तुतः ऐसे लोग कुछ पक्षपात पूर्ण दृष्टि वाले लोगों का अन्धानुकरण करते हुए ऐसा कहा करते हैं, स्वयं वे तो वेदार्थ की वर्णमाला से भी परिचित नहीं होते । इस मन्त्र में किसी भी शासक को उपदेश दिया गया है कि—हे पुरूरवः ! बहुतों के शासक तू (मा मृथाः) मत मृत्यु को प्राप्त कर (मा पप्तः) दूर मत जा । तुझे (अशिवासः वृकासः) अकल्याणकारी भेड़िये के स्वभाव वाले पुरुष (मा उक्षन्) न खावें । (स्त्रैणानि सख्यानि) स्त्री सम्बन्धी विषयासक्ति की मित्रतायें (न वै सन्ति) ठीक नहीं होतीं । (एता सालावृकाणां हृदयानि) ये तो भेड़िये कुत्तों के समान हृदय वाले अर्थात् छल से पूर्ण होती हैं ।

"कोई भी शासक दुर्व्यसनों से दूर रहते हुये संयमी सजग होकर ही राज्य कार्य को चला सकता है । नाना प्रकार की दुरभिसन्धियाँ करके राजा को मरवाने का प्रयत्न शत्रु देश वाले करते हैं । मित्रता करते हुये भी प्राण-घातक योजनायें बनाने से बाज नहीं आते । उनमें स्त्रियों को माध्यम बनाकर राजा से सारे भेद ले लेना उसे मदमस्त बनाकर उसकी शक्ति को चूर २ कर देना यह भी एक ढङ्ग है । राजा यदि संयमी है तो ऐसी चालों में कदापि न फँसेगा और राज्य तथा अपने आपको सुरक्षित रखेगा अतः वेद में उपदेश है कि ऐसी भोग्य वस्तुओं से सम्बन्धित मित्रतायें कुटिलता-पूर्ण होती हैं एवं ऐसी छलावा करने वाली स्त्रियाँ वृकों के तुल्य कपट वाली होती हैं उनसे बचो ।"

यहाँ सब नारियों को भेड़िये के हृदय वाली कहाँ बताया गया ! यहाँ तो बात ही कुछ और है । इतिहास में इसके पुष्कल उदाहरण हैं कि एक राष्ट्र को ध्वस्त करने में दूसरा राष्ट्र तब सफल हुआ जब ऐसी जासूस

भेद डालने वाली स्त्रियों का उपयोग उसने किया। ऐसी कुटिल चाल खेलने वाले शत्रु पक्ष स्त्रियों का उपयोग इस कार्य में कर सकते हैं उनसे बचो यह यहाँ कहा है। यदि दुर्जन-सन्तोष न्याय से यह माना भी जाये कि स्त्रियाँ भेड़िये के स्वभाव वाली होती हैं तो इस मन्त्र में **'अशिवासः वृकासः'** अर्थात् भेड़िये के स्वभाव वाले पुरुष भी तो कहा है। उस पर ध्यान क्यों नहीं देते ?

ऋषि दयानन्द ने तो यजु० १९।१२ मन्त्र के भावार्थ में भेड़िये जैसे हिंसक जीवों के गुणों का भी दिग्दर्शन करते हुये लिखा है—"जो परमात्मा का उपस्थान करते हैं वे यशस्वी कीर्तिमान् होते हैं जो योगाभ्यास करते हैं **वे भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान एकान्त देश का सेवन करके पराक्रम वाले होते हैं, जो पूर्ण ब्रह्मचर्य करते हैं वे क्षत्रिय भेड़िया व्याघ्र और सिंह के समान पराक्रम वाले होते हैं।"**

इस प्रकार भेड़िया आदि में सर्वथा दुर्गुण ही नहीं, गुण भी हैं। ये एकान्त सेवन वाला गुण स्त्री-पुरुषों में होना चाहिये। जिस भेड़िये के दुर्गुण का संकेत करते हुये यहाँ शासक को स्त्री सम्बन्धों से बचने को कहा है वह सर्वथा उचित है ऐसा न करने पर राज्य की हानि होती है, इस प्रकार 'स्त्री-हृदय भेड़िये के समान होता है' यह अर्थ करना वेद की एक टाँग पकड़ कर घसीटना है।

नारी तो सदैव २ से करुणा, क्षमा, दया, धैर्य एवं बलिदान की प्रति-मूर्ति रही है। अपवाद रूप में भी क्रूरता, जघन्यता उसका संसर्गजन्य दोष कहा जा सकता है नैसर्गिक नहीं। इसलिये मैं कह सकती हूँ कि आज भी सीता जैसी त्याग बलिदान की कथायें अनेकों परिवारों में प्राप्त हैं। प्रस्तुत पुस्तिका नारी विषयक मेरे कुछ इन्हीं विचारों का परिणाम है, जो भिन्न २ लेखों के रूप में लिखे गये हैं। मैं जानती हूँ शताब्दियों से अपनी राह भूली हुई नारी को सजग बनाने के लिये यह बहुत ही स्वल्प प्रयास है तथापि प्रसन्न हूँ कि कुछ नहीं की अपेक्षा हमने कुछ किया तो है।

निवेदयित्री—

प्रज्ञा देवी
प्राचार्या—पाणिनि कन्या महाविद्यालय
वाराणसी—५

मार्गशीर्ष शु० ६
वि सं. २०३४
१५ दिस० १९७७

द्वितीय संस्करण का वक्तव्य

किसी पुस्तक की लोक-प्रियता का प्रमाण यदि प्रकाशन के अनन्तर शीघ्र बिक जाना है तो इस विषय में यह लघु पुस्तिका उरुधारा नारी' बहुत आगे है। छह मास में ही इसके प्रथम संस्करण की एक हजार प्रतियाँ समाप्त हो गईं। इस बीच इस लघुकाय पुस्तिका के प्रशंसा-पत्र भी बहुत संख्या में आये जिनका उल्लेख मैं विस्तार भय से आवश्यक नहीं समझती।

यद्यपि प्रस्तुत संस्करण में कुछ लेखों की वृद्धि एवं कुछ यथेष्ट परिवर्त्तन परिवर्द्धन किये जा सके हैं तथापि पुस्तिका का मन चाहा आकार मैं प्रदान न कर सकी इसकी कसक पूर्ववत् मेरे हृदय में बनी है।

हमारे देश में एक समय आया जब सभी बुराइयों की जड़ नारी जाति को ही माना गया उसे पैरों की जूती बताया गया जब कि पवित्र वेद "रास्नासि इन्द्राण्यै उष्णीषः[1] = तू दानशीला ऐश्वर्यवती एवं सिर की पगड़ी के समान आदरार्हा है" कहते हैं। पातिव्रत धर्म का उपदेश केवल नारी को मिला, नर के लिये पत्नीव्रत धर्म की कोई आवश्यकता ही नहीं समझी गई बल्कि उसे ठौर-ठौर का भौंरा बताकर स्वच्छन्दता की पूरी छूट दे दी गई। गोस्वामी तुलसीदास जी ने रामचरितमानस[2] में अन्धे, बहरे, क्रोधी, दीन-हीन आदि आठ प्रकार के पति गिनाये हैं और कहा है कि नारी ऐसे अधम पतियों की सेवा न करेगी तो यमपुर में उसे सीधे प्रस्थान

---

१. यजु० ३८।३

२. वृद्ध रोगबस जड़ धन हीना। अन्ध बधिर क्रोधी अति दीना।।
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना।।
(द्र० रामचरितमानस अरण्य० ४-५)

करना पड़ेगा। किन्तु यह कहीं नहीं कहा गया कि यदि भाग्य की विडम्बना से अन्धी, बहरी, कानी, क्रोधी, दीन-हीन पत्नी प्राप्त हो जाये तो पति को भी उसकी सेवा न करने पर यमपुर में जाना पड़ेगा। स्पष्ट है पत्नी के लिये पति भगवान् (पूज्य) है पर पति के लिए पत्नी भी देवी है, भगवती (पूज्या) है यह नहीं सिखाया गया। इसको बताने के लिये इस युग में अकेला एक महर्षि दयानन्द आया जिसने यह स्पष्ट कहा —

"स्त्री का पूजनीय देव पति है और पुरुष की पूजनीय अर्थात् सत्कार करने योग्य देवी स्त्री है।"

(सत्यार्थ-प्रकाश चतुर्थ स०)

इन एकपक्षीय उपदेशों के कारण तो नारी जाति आत्महीनता को प्राप्त हो ही गई थी किन्तु पर्दा जैसी घृणित प्रथा ने उसका रहा-सहा आत्मबल भी समाप्त कर दिया। इस पर्दा प्रथा का प्रबल समर्थन हिन्दू मुस्लिम दोनों ने मिलकर किया। मुसलमानों के माने हुये बहुत बड़े दार्शनिक अल ग़ज़ाली ने लिखा है—"औरतों को घर से बाहर नहीं जाने देना चाहिये, न ही उन्हें छत पर खिड़की में या दरवाजे पर खड़े होना चाहिये क्योंकि शरारत की जड़ निगाहों में होती है" वे आगे लिखते हैं कि—"नबी ने कहा है कि औरत की रचना छाती की टेढ़ी हड्डी से की गई है इसलिये तुम औरत को झुकाओगे तो वह टूट जायेगी स्वतन्त्र छोड़ोगे तो वह और भी टेढ़ी हो जायेगी। औरतों से तो राय लेना ठीक है लेकिन आचरण उससे विपरीत करना चाहिये।[1]"

उपर्युक्त अल गज़ाली दार्शनिक के द्वारा लिखित वाक्यों पर क्या टीका टिप्पणी की जाये। मुझे तरस आता है उनकी दार्शनिकता पर! यदि शरारत की जड़ दो आँखें हैं तो वह तो पुरुष के पास भी हैं, अतः पर्दे के लिये बुर्का न केवल मुस्लिम स्त्रियों को पहिनना

१. स्टडीज़ इन मुस्लिम एथिक्स।

चाहिये बल्कि मुस्लिम पुरुषों को भी पहिनना चाहिये। औरत की रचना टेढ़ी हड्डी से हुई है और पुरुष की क्या सीधी हड्डी से हुई है? क्या गजब दार्शनिकता है? गृहस्थ जीवन में स्त्री की बात को न मानने वाला आचरण अपनाकर ही मुस्लिम स्त्रियों की दुर्दशा का ठिकाना नहीं रहा, बड़ी दर्दनाक स्थिति हो गई जिसे स्वयं मुस्लिम स्त्रियाँ बड़े हृदय की कराह के साथ मानती हैं। हिन्दू स्त्रियों की भी इस पर्दे के कारण बड़ी दयनीय स्थिति हो गई। गेंद को जब बहुत दबाया जाता है तो फूटने की स्थिति हो जाती है, समाज की भी वही स्थिति हुई। आज आधुनिक युग के बड़े-बड़े नगरों में पर्दा प्रथा के स्थान में बेपर्दा प्रथा जोर पकड़ती जा रही है जो पर्दा प्रथा से कम निन्दनीय एवं भयावह नहीं है। हम आर्यों को उससे भी सावधान होना होगा। पवित्र वेद के उपदेशों का प्रचार प्रसार करके ही हम नारी का वास्तविक मूल्यांकन कर पायेंगे यह मेरी दृढ़ धारणा है। उत्पथगामी बनकर भला किसने स्थिरता प्राप्त की है? वेद कहता है—"**वैश्वदेवी पुनती देव्यागाद्य-स्यामिमा बह्वयस्तन्वो वीतपृष्ठाः** (यजु० १९।४४) अर्थात् पवित्र उत्तम, विदुषी देवियाँ हमें प्राप्त हों जिससे हम समस्त ऐश्वर्यों को उपलब्ध करें" अतः उत्तम समाज एवं राष्ट्र को बनाने के लिये आज '**वैश्वदेवी**' की कामना करनी है।

अन्त में मुद्रणपत्र संशोधिका बेटी माधुरी को प्यार भरा आशीर्वाद देती हूँ।

वि० सं० २०३६, श्रावण
जुलाई–१९७९

निवेदिका—
प्रज्ञा देवी

—०—

तृतीय संस्करण का वक्तव्य

कतिपय वर्षों से प्रस्तुत पुस्तिका 'उरुधारा नारी' की प्रतियाँ अनुपलब्ध हो चुकी थीं। इस मध्य अनेकों पत्र भी प्राप्त हुवे अतः इसे पुनः प्रकाशित कराने के लिये तत्पर होना पड़ा है। उत्सव-जन्य कार्यों की इस भीड़ के मध्य इस तृतीय संस्करण के प्रकाशन का कार्य मुझ से कदापि सम्भव न हो पाता यदि स्नातिका बेटियाँ कु० सूर्या, चि० माधुरी एवं पुत्री प्रियंवदा का प्रचुर सहयोग न प्राप्त होता। तदर्थ इन बेटियों के लिये मेरी असीम शुभ-कामनायें हैं।

'नारी-सुरक्षा' आज की ज्वलन्त समस्या है। घर हो या बाहर वह विशेषरूप से अन्यायियों एवं पापियों के हाथ की ही खिलौना बनी हुई है, वह पुनः अपने उद्दीप्त कञ्चन की भाँति निखरे हुवे स्वरूप को प्राप्त कर सके इसके लिये मात्र बातें नहीं कार्य करने होंगे, जीवन होमना होगा। प्रभु करे ऐसा सामर्थ्य हम सबमें उत्पन्न हो कि इस दिशा में कुछ कर सकें।

२९ मई ८५ निवेदिका
गंगादशहरा २०४२ प्रज्ञा देवी

पुस्तक-प्रणयन के प्रेरक स्रोत, वेद में प्रयुक्त नारी वाचक कुछ शब्द

आज से कुछ वर्ष पूर्व वेदों का स्वाध्याय करते हुवे जब मुझे नारी वाचक कुछ बड़ उत्तम सम्बोधन मिले तो मन उत्साह एवं प्रसन्नता से भर उठा। वेदों में नारी को और कौन-कौन से शुभ अर्थों वाले शब्दों से विभूषित किया गया है, इस कार्य में मैं पूर्वा-पेक्षया अधिक सावधानी से तत्पर हो गई, परिणामतः ५०० के लगभग मन्त्र चारों वेदों से नारी विषयक मैंने छाँटे एवं १०० के लगभग नारी वाचक नाम मैंने इकट्ठे कर लिये। मेरे लिये यह महत्त्वपूर्ण उपलब्धि थी। सहस्राब्दियों से नारी-निन्दा या नारी-उपेक्षा का भाव समाज में व्यापक होते-होते जो अब युग के श्रवण-रन्ध्रों में भी समा चुका था उसका घोर प्रतिवाद इन वेद में आये नामों एवं मन्त्रों से हो रहा था अतः इसमें मुझे बेहद रुचि हुई।

वेद में प्रयुक्त इन नामों को सुलभता की दृष्टि से मैंने अब तक तीन प्रकारों में विभक्त किया है—

(१) अभिधावृत्ति से प्रयुक्त नारी वाचक शब्द[1]।
(२) उपमा से प्रयुक्त नारी वाचक शब्द[2]।
(३) ऋषि दयानन्द द्वारा विशेष व्याख्यात नारी वाचक शब्द[3]।

इन संगृहीत नामों में से जिनकी संक्षिप्त चर्चा इस पुस्तिका में आ चुकी है-उनकी सूची निम्न प्रकार है—

---

१. ये वे शब्द हैं जिनसे विशेषण या विशेष्य के रूप में सीधे नारी को सम्बोधित किया गया है।

२. इन शब्दों द्वारा नारी को उपमित किया गया है।

३. दयानन्द ने ही अपनी सूझ-बूझ से इन शब्दों के नारी वाचक अर्थ करते हुवे तत् तत् मन्त्रों के सुन्दर सामाजिक अर्थ किये हैं।

(१) अभिधावृत्ति से प्रयुक्त नारी वाचक शब्द–

नाम	अर्थ	पुस्तक पृष्ठ संख्या
१. अघ्न्या (य० ८।४३)	ताड़ना न देने योग्य	५९
२. अजुर्या (ऋ० २।३।२)	रोग रहित	९४
३. अदितिः (य० ८।४३)	असीम क्षमता वाली	६३-६६
४. अरण्यानी (ऋ० १०।१४६।१)	संन्यासाश्रम को प्राप्त	भू०पृ० ६
५. अश्वसूनृता (सा०पू० १७४१)	प्रिय शब्द करने वाली	५५
६. इडा (य० ८।४३)	प्रशंसनीय गुण युक्त	५९
७. इन्द्राणी इत्यादि अ०७।४९।२	ऐश्वर्यशाली पुरुष की पत्नी	८६
८. उरुधारा (य० ८।४२)	ज्ञान एवं सुशिक्षा को धारण करने वाली	५२
९ काम्या (य० ८।४३)	मनोहर स्वरूप वाली	५९
१०. कुलपा (अ० १।१४।३)	कुल की रक्षा करने वाली	७८
११. कुलायिनी (य० १४।२)	प्रशंसित गृह वाली	१००
१२. कुहूः (अ० ७।४७।१)	अद्भुत स्वभाव वाली	८५
१३ घृतवती (य० ४।२)	तेज स्वरूपा	१००
१४. घोरा (य० १२।६४)	दुष्टों को भयभीत करनेहारी	भू.पृ.५
१५. चतुष्कपर्दा (ऋ०१०।११४।३)	यज्ञ के मर्म को समझने वाली	भू.पृ.५
१६. चन्द्रा (य० ८।४३)	अत्यन्त आनन्द देने वाली	५९
१७. ज्योतिः (य० ८।४३)	श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान	५९
१८. ध्रुवा (य० १२।५३)	दृढ़ संकल्प वाली	भू.पृ. ५
१९. निर्ऋतिः (य० १२।६५)	सत्याचरण से युक्त	भू.पृ. ४
२०. पुण्यगन्धा (ऋ० ७।५५।८)	उत्तम यश वाली स्त्री	१०४
२१. पुरन्धिः (य० १४।२)	घर या समाज की नेत्री	१००
२२. पूषा (य० ३८।३)	पोषण करनेहारी	६१
२३. पृथुष्टुका (अ० ७।४६।१)	बहुत प्रशंसित	८२
२४. प्रतरणी (अ० १४।२।२६)	जीवन की पतवार	११३
२५. प्रतीची (अ० ७।४६।३)	निश्चित ज्ञान वाली	८३
२६. प्रथमा (य० ३३।५९)	यशस्विनी स्त्री	६८

नाम	अर्थ	पुस्तक पृष्ठ संख्या
२७. बहुसूवरी (अ० ७।४६।२)	वीर पुत्रों को जन्म देनेवाली	८३
२८. मही (य० ८।४३)	अतिपूजनीय	५९
२९. मातृमृष्टा(ऋ०१।१२३।११)	विदुषी माता की शिक्षा से पवित्र कन्या	७७
३०. रास्ना (य० ३८।३)	दानशीला	भू०पृ० १०
३१. वशिनी (ऋ० १०।८५।२६)	सबको वश में करने वाली	९६
३२. वाजिनीवती (य० ३४।३३)	कर्मठ स्त्री	५४
३३. वाय्या (सा०पू० १७४१)	विस्तार वाली	५५
३४. विश्पत्नी (अ० ७।४६।३)	सन्तानों का पालन करने वाली	८३
३५. विश्रुतिः (य० ८।४३)	बहुश्रुत स्त्री	५९
३६. व्यचस्वती (ऋ० २।३।५)	समस्त गुणों से व्यापक	९४
३७. शिवा (अ० १९।४०।३)	कल्याणकारिणी	६१-४२
३८. शोचद्रथा (सा०पू० १७४१)	सुन्दर स्वरूप वाली	५५
३९. सत्यश्रवसी(सा०पू० १७४१)	अच्छे यश वाली	५५
४०. सरस्वती (य० ८।४३)	प्रशंसित विज्ञान वाली	५९
४१. सहस्रस्तुका (अ० ७।४६।३)	हजारों लोग जिसकी स्तुति करें	८४
४२. सहीयसी (सा०पू० १७४१)	अत्यन्त बल वाली	५५
४३. सिनीवाली (अ० ७।४६।१)	अन्नपूर्णा या स्नेहशीला	८२
४४. सुजाता (सा०पू० १७४१)	शोभन उत्पत्ति वाली	५५
४५. सुनीथा (सा०पू० १७४१)	सुन्दर प्राप्ति वाली	५५
४६. सुभद्रिका[1] (य० २३।१८)	उत्तम कल्याण वाली	१४३

१. उव्वट महीधर ने सुभद्रिका का अर्थ "कुत्सिता सुभद्रा सुभद्रिका" किया है। इनके अनुसार यदि कन् प्रत्यय यहाँ कुत्सा में है तो 'सु' का प्रयोग व्यर्थ हो जाता है।।"काम्पीलवासिनीं सुभद्रिकाम्" लिख कर इन शब्दों का काम्पीलवासिनी कुत्सित स्त्री अर्थ करते हुए पूरे मन्त्र एवं प्रकरण का इतना अश्लील अर्थ इन लोगों ने प्रदर्शित किया है कि प्रतीत होता है ये सब वाममार्गियों के भी सरदार थे।

नाम	अर्थ	पुस्तक पृष्ठ संख्या
४७. सुमङ्गली (अ० १४।२।२६)	मङ्गल आचरण करने वाली	११३
४८. सुलाभिका(ऋ० १०।८६।७)	उत्तम ऐश्वर्य वाली	१४३
४९. सुशेवा (अ० १४।२।२६)	कल्याणप्रदा	११३
५०. सुषदा (य० १०।२६)	सुन्दर आश्रय वाली	९१
५१. सुषूमा (अ० ७।४६।२)	अच्छे गुणों की ओर प्रेरित करने वाली	८३
५२. सुसंकाशा(ऋ०१।१२३।११)	भली प्रकार प्रकाशित	७७
५३. स्तोमपृष्ठा (य० १५।३)	स्वाध्याय-शीला	१३७
५४. स्योना (य० १०।२६)	सुखरूपा	भू.पृ. ४,६१
५५. स्वौपशा य० ११।५६)	स्वादिष्ट भोजन बनाने वाली	११६
५६. हव्या (य० ८।४३)	स्वीकार करने योग्य	५९

(२) उपमा से प्रयुक्त नारी वाचक शब्द—

१. अप्[१] (य० १०।७)	जल तुल्य शान्त स्वभाव वाली नारी	११५
२. इष्टका (य० १३।२१)	त्यागमयी सहिष्णु देवी	१०९
३. उषा (य० ३४।३३)	प्रातः कालीन वेला के समान ऐश्वर्य युक्त मङ्गलमयी नारी	४
४. दूर्वा[२] (य० १३।२०)	दूर्वा घास के समान अपने कुल को बढ़ाने वाली	१०१

---

१. 'अप्' जल का वाचक है। यजुर्वेद भाष्य में ७ स्थलों पर ऋषि दयानन्द ने 'आपः' का अर्थ जल ही किया है, अन्यत्र जल तुल्य नारी यह अर्थ भी किया है।

२. 'दूर्वंति रोगान् अनिष्टं वेति दूर्वा' दूर्वा में रोगनिवारण के सैकड़ों गुण हैं। उसे न समझकर धार्मिक कृत्यों के साथ पूजाविधि में इसे जोड़ दिया गया। ये समस्त दूर्वा के गुण नारी में होने चाहिये यही उपमा का प्रयोजन है।

नाम	अर्थ	पुस्तक पृष्ठ संख्या
५. देवीर्द्वारः (ऋ० ५।५।५)	शोभायुक्त द्वारोंके समान सुख देने वाली	९३
६. प्राची इत्यादि (य० १४।१३)	पूर्व दिशा के समान प्रकाशयित्री	१२४
७. राका (अ० ७।४८।१)	पौर्णमासी के समान शोभायमान	८१
८. रात्रिः (ऋ० १०।१२७।१)	रात्रिके समान शान्ति प्रदात्री नारी	३१

(३) ऋषि दयानन्द द्वारा विशेष व्याख्यात नारी वाचक शब्द—

१. उपजिह्विका (य० ११।७४)	अनुकूल रसना वाली	१२०
२. मण्डूकी (य० १७।६)	सुभूषिता विदुषी स्त्री	५२
३. विषूचिका (य० १९।१०)	विविध अर्थों की सूचना करने हारी रानी	१३३
४. सरमा (य० ३३।५९)	समानता से रमण करनेवाली अर्थात् पति के अनुकूल चलने वाली, चतुर वैद्या	६८
५. अश्वाजनी[1] (य० २९।५०)	घोड़ों को प्रशिक्षित करने वाली स्त्री	भू०पृ० ४,११०

१. 'अश्वाजनीं कशेत्याहु.' ऐसा निरु० ९।१८ में कहा है। इस प्रकार अश्वाजनी का चाबुक अर्थ निरुक्तकार का है किन्तु ऋषिवर दयानन्द 'अज गतिक्षेपणयोः' धातु से ल्युट् एवं ङीप् करके 'अश्वस्य अजनी = अश्वाजनी' ऐसी व्युत्पत्ति मानते हुए यजु० २९।५० में अश्वाजनी शब्द का घोड़ों को प्रशिक्षित करने वाली विदुषी रानी तथा ऋ० ६।७५।१३ में 'अश्वानां प्रक्षेप्त्रि राज्ञि' यह अर्थ किया है। निरुक्तकार एवं दयानन्द की व्युत्पत्ति में यहाँ अन्तर न होने पर भी वाच्यार्थता का महदन्तर है जिससे यौगिकार्थ से हुई मन्त्रार्थ की व्यापकता स्पष्ट होती है। ऋषिवर के अतिरिक्त उव्वट महीधरादि को सिवाय गन्दे अर्थों के ये सामाजिक अर्थ सूझे ही नहीं। इसी शब्द का ऋषिवर ने ऋ० ५।६२।७ में अश्वाजनीव = विद्युदिव (स्थूणा = दृढा नीतिः) अर्थ किया है।

इसके अतिरिक्त चौथे प्रकार के नारी वाचक शब्द वे भी माने जा सकते हैं जिनमें नारी के सौन्दर्य का प्रतिपादन है। ये नाम भी कम मनमोहक नहीं। परमात्मा सौन्दर्य प्रेमी है इसीलिये "स्वच्छ सुन्दर स्थान में भगवान् का वास होता है". ऐसा कहते हैं सो उसके द्वारा घड़ी कोमलाकृति नारी के सौन्दर्य का वर्णन भी बड़ा सरस है जिनके कुछ नमूने प्रस्तुत हैं—

सौन्दर्य वाचक शब्द—

१. सुकपर्दा (य० ११।५६)	उत्तम केशों वाली	११६
२. सुकुरीरा (य० ११।५६)	उत्तम आभूषणों वाली	११६
३. सुप्रायणाः (ऋ० २।३।५)	अच्छी चाल वाली	९३
४. सुबाहुः (अ० ७।४६।२)	श्रेष्ठ भुजाओं वाली	८२
५. स्वंगुरिः (अ० ७।४६।२)	अच्छी उँगलियों वाली	८३

उपर्युक्त नामों में बहुत कार्य का विस्तार है, यह तो संकेत मात्र ही माना जा सकता है। प्रस्तुत निबन्धों में चूँकि मेरा ध्येय नारी की महत्ता को वेद से ही प्रतिपादित करना था अतः रामायण, महाभारतादि ऐतिहासिक ग्रन्थों के उदाहरण विषय की पुष्टि या नारी माहात्म्य प्रतिपादन के लिये नहीं के रूप में ही हमने रखे हैं। वेद को ही प्रमुख बनाकर लिखी गई ये नारी विषयक पुस्तक अपने ढंग का एक नवीन प्रयास है।



विषय-सूची

दो शब्द	३-९
द्वितीय संस्करण का वक्तव्य	१०-१२
तृतीय " " "	१३
वेद में प्रयुक्त नारीवाचक कुछ शब्द	१४-१९
१. वेद की तुला पर नारी का स्थान	१-६
२. स्त्रियों के उत्थान में आर्यसमाज का योगदान	७-१२
३. नारी को वेदाध्ययन की सुविधा महर्षि दयानन्द की देन	१३-१९
४. स्त्रीशिक्षा का महत्त्व	२०-२५
५. वैदिक आदर्शों का विवाह	२६-३१
६. पारिवारिक सफलता की कसौटी स्वस्थ व्यवहार	३२-३५
७. प्राचीन युग में नारी शिक्षा उद्देश्य पद्धति एवं विशेषता	३६-४१
८. माँ की देन	४२-४६
९. बेटी की माँ	४७-४९
१०. ममतामयी रात्रि माँ	५० ५३
११. उषा देवी	५४-५८
१२. त्रिः स्वरूपा माँ	५९-६२
१३. अदिति माँ	६३-६६
१४. स्वयंवरा कन्या	६७-७०
१५. शोकशंकु कन्या या मोदसिन्धु कन्या	७१-७५
१६. कन्या की समस्या	७६-८०
१७. सिनीवाली-राका-कुहू देवपत्नी आदि नारियाँ	८१-८७

१८. रत्नगर्भा ८८-९२
१९. बिन दरवाजे का मकान ९३-९५
२०. कोशिका ९६-९९
२१. नारी का कुलाय १००-१०३
२२. पुण्यगन्धा १०४-१०७
२३. इष्टका १०८-११२
२४. प्रतरणी गृहाणाम् ११३-११५
२५. उखा ११६-११९
२६. उपजिह्विका १२०-१२३
२७. दिशायें एवं दिग्पाल १२४-१२८
२८. वैदिक धर्म में नारी का स्थान १२९-१३२
२९. विषूचिका १३३-१३६
३०. स्तोमपृष्ठा १३७-१४०
३१. ये अनमेल जोड़े १४१-१४४



वेद की तुला पर नारी का स्थान

पारसी मत हो या यहूदी, बौद्ध साहित्य हो या मुस्लिम, ईसाइयत हों या शंकराचार्य का पौराणिकवाद सभी ने स्त्रियों का स्थान मनुष्यत्व से निचले दर्जे का ही माना है। स्त्री पुरुष की पशु सम्पत्ति हैं, उस पर वह मनमाने अत्याचार कर सकता है इस विषय के प्रमाण सभी मत मतान्तरों की धर्म पुस्तकों से बटोर लेना बहुत कठिन कार्य नहीं है। यह कहना गलत न होगा कि विदेशी आक्रमणकारी बर्बर ईसाई, मुस्लिम, पारसी आदि जातियों ने एवं उनकी धर्म व्यवस्थापक पुस्तकों ने ही स्त्रियों को दासी एवं लौंडी[1] बना लेना, उनका विक्रय कर देना, उनको घृणा की दृष्टि से देखना आदि भारत को सिखाया। मुसलमानों द्वारा प्राप्त कन्याओं के लिये यह शब्द जिसका व्यवहार कन्याओं के लिये आज भी अनेकत्र[1] किया जाता है, बड़ा ही गन्दा है। कन्याओं के लिये लौंडी कहने का तात्पर्य है कि कोई भी लड़की संसार में पैदा ही लौंडी=कर्मकरी, विक्रीतदासी के रूप में है। मध्यकाल में राजकीय सम्मान प्राप्त स्त्रियों का भी क्रयण किस प्रकार निःसंकोच राजाओं द्वारा कर दिया जाता था तथा इसकी पुष्टि में राजपुरोहित भी अपनी व्यवस्थायें मनघड़न्त श्लोकों द्वारा कर दिया करते थे यह [2]ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के अनुसार द्रष्टव्य विषय है। मुसलमानों में चार स्त्रियों तक विवाह कर लेना वैधानिक माना गया है। अन्य मतावलम्बी भी बहुपत्नीवाद से मुक्त नहीं। इस बहुपत्नीवाद के रहते

---

१. उत्तर प्रदेश के पश्चिमी इलाकों, हरियाणे एवं पञ्जाब प्रान्त के कुछ भागों में कन्याओं को लौंडी या लौंडिया के नाम से ही आज भी पुकारा जाता है॥

२. देखें--प्रसिद्ध साहित्यकार श्री जयशंकर प्रसाद कृत 'ध्रुवस्वामिनी' नाटक एवं तत्कालीन इतिहास॥

कौन कह सकता है कि स्त्रियों पर पशुता वाला व्यवहार उनके यहाँ नहीं है। इनके यहाँ बड़े-२ चिन्तकों एवं विचारकों ने स्त्रियों के सम्बन्ध में बड़ी हीन एवं गिरी हुई सम्मतियाँ दी हैं।

इस विषय पर विस्तृत अवगाहन करते हुवे इस मूल भित्ति पर स्पष्ट रूप से पहुँचा जा सकता है कि वैदिक धर्म के अतिरिक्त विश्व में कोई भी मान्यता ऐसी नहीं जिसमें नारी महिमा का इतना उत्कृष्ट व्याख्यान हो। आधुनिक युग में पुराणों एवं स्मृतियों की सड़ी गली परम्पराओं को मान्यता प्रदान करने वाले स्त्री-द्वेषी स्वामी करपात्री जी जैसे लोग उन मन्त्रों का क्या करेंगे जिन मन्त्रों का देवता ही "विदुषी"[१] है या जिन मन्त्रों में स्पष्ट रूप से 'मातृ' शब्द विशेष्य रूप में आया है। लिङ्गोक्त देवता को ही यदि देवता = प्रतिपाद्य विषय के रूप में स्वीकार किया जाये तो ये मन्त्रगत शब्द इस बात को सिद्ध करने में पर्याप्त हैं कि माता की महिमा एवं कर्त्तव्य ही इन मन्त्रों में वर्णित है।

उदाहरणार्थ—यजुर्वेद अध्याय ११ मन्त्र ६८ एवं ६९ द्रष्टव्य हैं। इन दोनों मन्त्रों का देवता 'अम्बा' है। अन्त तक तदनुसार मन्त्र में भी 'अम्बा' शब्द पढ़ा है—

मा सु भित्था मा सु रिषोऽम्ब धृष्णु
वीरयस्व सु। अग्निश्चेदं करिष्यथः॥

---

१. मूर्धाऽसि राड्ध्रुवाऽसि धरुणा धर्त्र्यसि धरणी।
आयुषे त्वा वर्चसे त्वा कृष्यै त्वा क्षेमाय त्वा॥ यजु० १४।२१॥
यन्त्री राड् यन्त्र्यसि यमनी ध्रुवाऽसि धरित्री।
इषे त्वोर्ज्जे त्वा रय्यै त्वा पोषाय त्वा०॥ यजु० १४।२२॥
'या तेन उच्यते सा देवता' (निरु०) के अनुसार इन दोनों मन्त्रों का प्रतिपाद्य विषय विदुषी स्त्री है। मन्त्रों में बताया है कि विदुषी स्त्री कैसी हो?

मन्त्रार्थ इस प्रकार है--हे अम्ब! माता तू हमको मा सुभित्थाः = मत छुड़ा [उत्तम विद्या से] मा सुरिषः = मत दुःख दे धृष्णु सु वीरयस्व = दृढ़ता से वीर बना जिससे हम एवं तुम लोग अग्निः = अग्नि के समान तेजस्वी बनें। इसी प्रकार माता विषयक अगला मन्त्र भी जानना चाहिये। वेद में माता की शिक्षा के सम्बन्ध में जो-जो स्थल आये हैं उनकी एक बड़ी सूची[1] बन सकती है।

इसके अतिरिक्त पत्नी देवता वाले मन्त्र भी अनेक हैं उदाहरणार्थ यजु०[2] १३।२०–२१ मन्त्रों को देखें। इन मन्त्रों में क्रमशः दूर्वा घास का तथा इष्टका (ईंट) का दृष्टान्त देते हुवे पत्नी के कर्त्तव्यों एवं शालीनता का मनोहारी वर्णन है। इसी प्रकार दम्पती देवता वाला मन्त्र उदाहरणार्थ प्रस्तुत है—

भवतन्नः समनसौ सचेतसावरेपसौ।
मा यज्ञꣳ हिꣳसिष्टं मा यज्ञपतिं जातवेदसौ शिवौ भवतमद्य नः॥
य० १२।६०

---

१. कुछ स्थलों के नमूनें देखें--[1]आ पुत्रासो न मातर……(ऋ० ७।४३।३) वही माता अच्छी है जो विदुषी बनकर सन्तानों को अच्छी शिक्षा देती है। [2]मातुष्पदे परमे शुक्र……(ऋ० ५।४३।१४) जैसे माता अपने सद्यः जनित शिशु की रक्षा करती है वैसे ही योगीजन योगाभ्यास से चित्त को शुद्ध करते हैं॥ योग के लिये चित्तशुद्धि आवश्यक है इस विषय का माता सम्बन्धी कितना मनोहारी यह दृष्टान्त है। [3] समी वत्सं न मातृभिः……(साम० पू० सं० ११५८) माताओं के साथ जैसे बच्चे मिलकर रहते हैं उसी प्रकार हम प्रभु के प्रिय बनें। [4]उत माता महिषमन्ववेनद्……(ऋ० ४।१८।११) माता पुत्र को उत्तम बनावे॥

२. काण्डात् काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्रतनु सहस्रेण शतेन च॥
या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि।
तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम्॥

मन्त्रार्थ है—हे पति पत्नी ! तुम दोनों समनसौ=एक मन वाले सचेतसौ=जागरूक अरेपसौ=अपराध न करने वाले नः=हमारे लिये भवतम्=होइये तुम दोनों यज्ञं मा हिंसिष्टम् मा यज्ञपतिम्=यज्ञ एवं यज्ञपति को मत नष्ट करो । अद्य नः=आज हमारे लिये जातवेदसौ शिवौ भवतम्=ज्ञानयुक्त कल्याणकारी बनो ।। इससे आगे[1] का मन्त्र 'पत्नी' देवता वाला है। अथर्ववेद के छठे काण्ड के १३९ वें इस पूरे सूक्त का ही देवता 'दम्पती' है।

यजुर्वेद १२।७६-७७ मन्त्रों का देवता वैद्या माता है। इन मन्त्रों में कहा है कि हे चिकित्सिके[2] वैद्ये मातः ! मे अगदं कृत=मुझे रोग रहित करो।

इसी प्रकार यजुर्वेद २३ वें अध्याय के ३६वें[3] ३७ वें मन्त्र का देवता स्त्री है। इस अध्याय के ३६ वें मन्त्र में कहा हुआ है कि देवों विद्वानों की पत्नियों को चाहिये कि वे अपनी (मनीषया) सुसूक्ष्म बुद्धि के द्वारा सर्वत्र (लोम) अनुकूलता उत्पन्न करें, परिवार तथा राष्ट्र को बनायें।

इस प्रकार स्त्रियों को वेद पढ़ना चाहिये, उनका वेद में बहुत उत्कृष्ट स्थान माना गया है यह झख मारकर भी पौराणिकों को स्वीकार करना पड़ेगा। पौराणिक जगत मिट्टी की बनी जड़ सिंहवाहिनी दुर्गा की पूजा उपासना शास्त्रविहित मानता है एवं चलती फिरती

---

१. मातेव पुत्रं पृथिवी पुरीष्यमग्निꣳ स्वे योनावभारुखा।
तां विश्वैर्देवैर्ऋतुभिः संविदानः प्रजापतिर्विश्वकर्मा विमुञ्चतु ।।
यजु० १२।६१

२. शतं वो अम्ब धामानि सहस्रमुत वो रुहः।
अधा शतक्रत्वो यूयमिमं मे अगदं कृत ।।

३. नार्यस्ते पत्न्यो लोम विचिन्वन्तु मनीषया।
देवानां पत्न्यो दिशः सूचीभिः शम्यन्तु त्वा ।।

चेतना सम्पन्न स्त्री जाति को वेद ज्ञान से हीन कूप-मण्डूक कबूतरी बनाकर रखने की बात करता है, यह कितना अनर्थ है, ? यजुर्वेद के ······'नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्च वो नमो नम उगणाभ्यस्तृꣳहतीभ्यश्च वो नमः' (१६।२४) इस मन्त्र में कहा है कि आव्याधिनीभ्यः=शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाली स्त्रियों को विविध्यन्तीभ्यश्च=शत्रुओं को बींधने वाली तृंहतीभ्यश्च=युद्ध में मारती हुई तथा उगणाभ्यः=विविध प्रकार के तर्क करने वाली महान् स्त्रियों को नमस्ते है। मन्त्रार्थ कहता है कि प्रत्येक स्त्री को बलशालिनी दुर्गा का प्रतीक बनना चाहिये किन्तु महीधर ने यहाँ भी दुर्गा की प्रतिमा पूजा वाला ही अर्थ किया है। सिंहवाहिनी दुर्गा को अक्षत नैवेद्य चढ़ाने वाले जन अपने घर की स्त्रियों से चूहे का डर भी न हटा सके यह है जड़पूजा का दुष्परिणाम।

प्रकृत मन्त्र में महर्षि दयानन्द प्रदर्शित "उगणा" शब्द का अर्थ विशेष ध्यान देने योग्य है। महर्षि इस शब्द का अर्थ लिखते हैं—विविधतर्कयुक्ताः गणाः यासु ताभ्यः (स्त्रीभ्यः)। निःसन्देह यह अर्थ उनकी सूझबूझ का परिचायक है। व्यत्यय आदि के नियमों का वेद में यथावसर भली भाँति प्रयोग करते हुवे ऋषिवर ऐसे मन्त्र के शब्दार्थ उपस्थित कर सके यही उनका ऋषित्व है। शोक है कि ऐसे देश हितैषी समाज-रक्षक महर्षि को कुछ दूषित मति वाले लोग जिनकी जीवनचर्या ही दयानन्द को गाली देने पर आधारित है आज भी नहीं समझते। सत्य को ढँपने के लिये वे कितने ही बड़े पोथे क्यों न रच लें दयानन्द के अकाटच तर्कों के सामने वे आज भी बौने हैं।

इस प्रकार वेद के अतुलनीय नारी गौरव को पढ़ समझकर यह निर्विवादरूपेण कहा जा सकता है कि स्त्री जाति पूजार्हा एवं सत्कारार्हा है, उसे सब कुछ पढ़ने लिखने एवं विदुषी बनने का

पूर्ण अधिकार है। मैं अपने अनुभव के आधार पर यह कह सकती हूँ कि अपने प्रति वैदिक धर्म के इस उदार दृष्टिकोण को देखकर विश्व के समस्त मत-मतान्तरों की महिलायें (जहाँ उन्हें न वैचारिक स्वतन्त्रता प्राप्त है न वे सामाजिक रूढ़िवादिताओं से मुक्त हैं जो पङ्गुवत् एक मूढ़ता का जीवन खूँटे में बँधे हुवे पशु के समान व्यतीत कर रही हैं जो वैदिक सत्सगादि में भी घरेलू दबाव के कारण भाग नहीं ले सकतीं) बड़ी खुशी से [वैदिक धर्म में प्रवेश कर लेना चाहती हैं, जहाँ उन्हें सम्मान का जीवन प्राप्त है किन्तु इसमें बाधक वह स्वार्थी पुरुष समाज है जो इनका उपभोग पशु धन के के समान कर रहा है। पशु भी स्वतन्त्रता एवं सुन्दरता से जीना पसन्द करते हैं फिर ये बेचारी बहिनें क्यों नहीं पसन्द करेंगी ???



स्त्रियों के उत्थान में आर्यसमाज का योगदान

महर्षि दयानन्द अथवा आर्यसमाज के नारी उत्थान विषयक कार्य की मूल आधार भित्ति पवित्र वेद रहे हैं। सुधाररूपी जन आन्दोलन का नारी शिक्षा विषयक केन्द्र बिन्दु कितना महत्त्वपूर्ण है इसे महर्षि दयानन्द अपनी दिव्य-दृष्टि से जान चुके थे तथा वे जानते थे कि विभिन्न कुण्ठाओं, अन्ध-विश्वासों एवं आत्मतेज से हीन इस आर्य जाति में पूर्णतया साहस, ओज एवं तेज तभी फूँका जा सकता है जब नारी को विद्यागुण-विभूषिता, शक्ति सम्पन्ना बनाया जाये। इस विषय में इतिहास के भी सबल प्रमाणों को प्रस्तुत करते हुवे ऋषि दयानन्द ने यह बताया कि "पुराकाल में स्त्रियाँ कैसी पण्डिता एवं विदुषी होती थीं।" उपदेश मञ्जरी पूना के १२ वें प्रवचन में वे कहते हैं—

(क) "प्राचीन आर्य लोगों में गार्गी, मैत्रेयी आदि कैसी २ विदुषी स्त्रियाँ हो गई हैं। आजकल स्त्री को विद्या पढ़ने का अधिकार नहीं, वह शूद्र के समान है। यदि स्त्रियाँ पढ़ी लिखी होतीं तो इन पण्डितों की बड़बड़ाहट का खण्डन करके एक घड़ी में इनका मुँह बन्द कर देतीं।" (पृष्ठ १२६)

(ख) "गार्गी, सुलभा, मैत्रेयी, कात्यायनी आदि बड़ी-२ सुशिक्षित स्त्रियाँ होकर बड़े-२ ऋषि मुनियों की शंकाओं का समाधान करती थीं।" (पृ० २०)

इसी प्रकार अमर 'ग्रन्थ' सत्यार्थ प्रकाश-में वे लिखते हैं—

(क) 'देखो ! आर्यावर्त्त के राजपुरुषों की स्त्रियाँ धनुर्वेद अर्थात् युद्धविद्या भी अच्छे प्रकार जानती थीं क्योंकि जो न जानती होतीं तो कैकेयी आदि दशरथ आदि के साथ युद्ध में क्योंकर जा सकतीं ? और युद्ध कर सकतीं·········।" (स० प्र० तृ० स० पृ० ५७)

(ख) "भारतवर्ष की स्त्रियों में भूषणरूप गार्गी आदि वेदादि शास्त्रों को पढ़के पूर्ण विदुषी हुई थीं यह शत० ब्रा० में स्पष्ट लिखा है········।" (पृ० ५७)

शिक्षा की दृष्टि से स्त्री हो या पुरुष दोनों को ही पूर्ण विद्या पढ़ने का अधिकार है यह महर्षि दयानन्द ने ही इस युग में पुनः प्रमाणित किया। वे कहते हैं—

"ईश्वर के समीप स्त्री-पुरुष दोनों बराबर हैं क्योंकि वह न्यायकारी है।" पूना प्रवचन पृ० १२६

मिथ्या आडम्बरों की बाढ़ का सबसे बड़ा कारण स्त्रियों की अशिक्षा ही है, इसे मानते हुवे ऋषि दयानन्द कहते हैं --

"जब सब स्त्री-पुरुष सर्वत्र वेदों का अवलोकन करेंगे, तब इन सम्प्रदायियों की लटपट बन्द होगी।" (पृ० ४८)

यह कहना सर्वथा उचित होगा कि आर्यसमाज के जागरण से पूर्व नारी जाति समाज में सह अस्तित्व के अधिकार से भी सर्वथा बञ्चित होकर क्रियाशून्य हो चुकी थी। बौद्धकाल में बौद्ध भिक्षुणियों के रूप में कुछ नारियाँ जो हमें दृष्टिगोचर होती हैं वे न तो नारी के छीने हुवे प्राप्तव्य की देन का प्रमाण मानी जा सकतीं, न ही वेद वैदुष्य एवं सामाजिक मर्यादाओं का आदर्शरूप मानी जा सकतीं। इसके विपरीत यह कहा जा सकता है कि जिस प्रकार बौद्धकाल में आर्ष संस्कृत ग्रन्थों का अत्यन्त ह्रास हुआ उसी प्रकार वर्णाश्रम धर्म की मर्यादा हीन घिनौने व्यवहारों[1] से नारी समाज का आदर्श धूमिल ही हुआ, भव्यता नहीं आई। आती कैसे ? अन्य विद्याओं के साथ-२ जो वेद नारी शिक्षा एवं सद्व्यवहारों के मूल उत्स हैं उन्हें तो बौद्ध समुदाय मानता ही नहीं। इधर (संस्कृत

---

१. इस विषय में विस्तार के लिये देखें—"संस्कृत भाण साहित्य की समीक्षा" लेखक डा० श्रीनिवास मिश्र पृ० २८४-२८५ ॥

एवं हिन्दी दोनों) साहित्यकारों ने भी नारी को जब २ याद किया कामिनीकाञ्चन तथा भोग-विलास के साधन के रूप में ही। ऐसे दुःखद अरुन्तुद गर्त्त में पड़ी नारी का शुद्ध कञ्चन स्वरूप वेद का आधार लेकर महर्षि दयानन्द ने ही दिखाया। उन्होंने बताया कि जब तक गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी सुयोग्य विद्वान् विदुषी नहीं होंगे तब तक न समाज में सुख होगा न ही राष्ट्र एवं धर्म रक्षक सन्तान होगी। महर्षि दयानन्द से पूर्व के उव्वट महीधरादि भाष्यकार वेदों के ऊटपटाङ्ग कर्मकाण्ड परक व्याख्याओं मे ही जुटे रहे। इस देश और समाज को कोई जंग भी खाये जा रहा है इसकी ओर शुतुर्मुर्ग की तरह उनकी आँखें बन्द रहीं। नवीन वेदान्तियों के शिवोऽहम् वाद एवं बौद्धों के अहिंसावाद ने तो जाति के अन्दर ऐसी जड़ता पैदा कर दी थी कि उठ खड़े होने की शक्ति भी नहीं रह गई थी। वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द ने ऐसे समय में वेद के सामाजिक शिक्षा परक अर्थ रखे और उससे नारी शिक्षा के स्रोत को जन-जन के हृदयों में प्रवाहित कर दिया। उन्होंने बताया कि "योग्य स्त्रियों को योग्य पति से विवाह करना चाहिये।" [1]यजु० १२।६२ के भावार्थ में वे लिखते हैं—"हे स्त्रियो! तुम लोगों को चाहिये कि पुरुषार्थ रहित चोरों और उनके सम्बन्धी पुरुषों को अपने पति करने की इच्छा न करो, आप्त पुरुषों की नीति के तुल्य नीति वाले पुरुषों को ग्रहण करो। जैसे पृथिवी अनेक उत्तम फलों के दान से मनुष्यों को प्रसन्न करती है वैसी होओ। ऐसे गुणों वाली तुमको हम लोग नमस्कार करते हैं।"

इसी प्रकार [2]यजु० ११।३३ के भावार्थ को देखें—

---

१. असुन्वन्तमयजमानमिच्छ स्तेनस्येत्यामन्विहि तस्करस्य।
अन्यमस्मदिच्छ सा त इत्या नमो देवि निर्ऋते तुभ्यमस्तु॥

२. तमु त्वा दध्यङ्ङृषिः पुत्र ईधे अथर्वणः। वृत्रहणं पुरन्दरम्॥

"जो पुरुष वा स्त्री साङ्गोपाङ्ग सार्थक वेदों को पढ़के विद्वान् वा विदुषी होवें, वे राजपुत्र और राजकन्याओं को विद्वान् और विदुषी करके उनसे धर्मानुकूल राज्य तथा प्रजा का व्यवहार करवावें।"

एक और यज्ञ देवता वाले [१]यजु० ६।३४ के मन्त्र का अन्वयार्थ ऋषि के शब्दों में ही देखें—

"हे देवीर्देव्यः पत्न्यः स्त्रियो यूयं वृत्रतुर इव राधोगूर्त्ता एव सत्यः (पत्नीः) यज्ञसहकारिण्यः श्वात्राः स्थ, ता देवत्रेमं यज्ञं नयत, उपहूता इवामृतस्य सोमस्यातिस्वादिष्ठं सोमाद्योषधिरसं पिबत।"

अर्थात् हे विद्याशील स्त्रियो! तुम अच्छे गुणों से युक्त होकर याज्ञिक कार्यों में अपने विद्वान् पतियों को सहायता देने वाली बनो तथा सोमादि औषधियों का पान करती एवं कराती हुई ऐश्वर्य की वृद्धि करो।

इस प्रकार के नारी शिक्षोपयोगी सैकड़ों उदाहरण ऋषिवर के वेदभाष्य से प्रस्तुत किये जा सकते हैं यह तो किञ्चित् नमूना मात्र हैं।

इस दृष्टि से ऋषि दयानन्द एवं आर्यसमाज का नारी उत्थान विषयक कार्य अत्यन्त समुचित वेदोक्त आधार सम्पन्न एक बहुत बड़ी वैचारिक क्रान्ति का ज्योतिः स्तम्भ स्वरूप है कि जिसके समक्ष किसी का भी यह अहं माने नहीं रखता कि "सदियों से उत्पीड़ित नारी के पथ प्रदर्शन में हमने दीप दान कर उसका विशुद्ध लक्ष्य प्राप्त कराया है।"

कुछ दुःख से लिखना पड़ता है कि नारी उत्थान विषयक जिस तीव्र एवं पवित्र लहर को दयानन्द एव आर्यसमाज ने पूरी शक्ति के साथ इस युग में चलाया ही नहीं एवं वेद विदुषी पण्डितायें भी पैदा कीं, उस आर्यसमाज का स्त्री शिक्षा विषयक योगदान के

---

१. श्वात्रा स्थ वृत्रतुरो राधोगूर्ता अमृतस्य पत्नीः।
ता देवीर्देवत्रेमं यज्ञं नयतोपहूताः सोमस्य पिबत॥

रूप में स्त्री शिक्षा का समर्थन करते हुवे भी कुछ पक्षपाती लोग उसका नाम भी लेना पसन्द नहीं करते अपितु सदैव यही बताते एव जतलाते हैं कि "स्त्री-शक्ति" कहकर हम ही स्त्रियों के प्रथमोद्धारक हैं, जब कि ऐसे लोगों को स्त्रीशिक्षा विषयक मूलाधार वेद का ज्ञान नाम मात्र को भी नहीं। ऋषि दयानन्द की कृपा से आज नारियाँ सुशिक्षित होकर राजनीति के उच्चपद पर समासीन होने में सक्षम हुई हैं। आर्य समाज ने धुरन्धर व्याख्यानों शास्त्रार्थों एव निबन्ध, लेखों के द्वारा जन-जन के अन्दर यह जागृति उत्पन्न कर दी कि पुत्रियों का बाल विवाह रुकना चाहिये, विधवा विवाह होने चाहियें एवं पुत्रियों को पूर्ण सुशिक्षित बनाना चाहिये। आर्यसमाज के इस तीव्र जन आन्दोलन का ही प्रभाव रहा है कि पाखण्डी लोग भी 'अष्टवर्षा भवेद् गौरी' की बात छोड़कर आज अपनी पुत्रियों को शिक्षा देने लगे, फिर भी अफ़सोस[1] होता है उन लोगों पर, जो जानबूझकर दयानन्द का नाम इस विषय में लेना पसन्द नहीं करते या आर्यसमाज जैसे पवित्र आन्दोलन को किसी झगड़े या फ़साद का रूप देकर घृणा का रूप जनसमुदाय में पैदा करने का प्रयत्न करते हैं उदाहरणार्थ—कविवर पं० नाथूरामजी शंकर शर्मा जो अपने काव्यों के द्वारा विधवा-विवाह आदि का

---

१. श्रीमती इन्दिरा गान्धी ने "भारतीय नारी का सबसे बड़ा मसला" नामक अपने लेख में लिखा है कि—हम भारत की स्त्रियाँ वास्तव में सौभाग्यशाली हैं कि हमारे पक्ष की रहनुमाई के लिये राममोहन राय, विद्यासागर, महात्मा गाँधी, मेरे पिता और महर्षि कर्वे जैसी विभूतियाँ हमें उपलब्ध रहीं।" इन पंक्तियों में ऋषि दयानन्द का नाम भूल जाना कितने बड़े अल्पमति अथवा पक्षपातपूर्ण दृष्टि का परिचायक है यह पाठक स्वयं देख लें॥

समर्थन बाल विवाहादि के विरोध का प्रचार करते रहे, बहुत श्रेष्ठ[1] कवि थे उनके काव्य को हिन्दी साहित्य के पं० रामचन्द्र शुक्ल जैसे लब्धप्रतिष्ठ लेखक ने हिन्दी साहित्य का इतिहास लिखते हुवे उद्दण्डता मूलक बताया है और इस उद्दण्डता में हेतु लिखा है कि उनका सम्बन्ध आर्यसमाज से रहा जिसमें अन्धविश्वास और सामाजिक कुरीतियों के उग्र विरोध की प्रवृत्ति थी ।[2] स्पष्ट है कि एक श्रेष्ठ समाजसुधारक कवि के लिये ऐसे भाव एवं भाषा का प्रयोग आर्यसमाज के प्रति गहरी अरुचि प्रदर्शनार्थ ही है जो गर्ह्य है ।

ऋषि दयानन्द द्वारा उद्बोधित स्त्री शिक्षा विषयक पुत्री पाठशालाओं का जो जाल आर्यसमाज ने देश भर में फैलाया वह एक श्लाघनीय विषय है, सनातनधर्म पाठशाला, खालसा विद्यालय यहाँ तक कि मुस्लिम इण्टर कॉलिज तक का बन जाना भी इस आर्यसमाज की ललकार का ही तो परिणाम रहा है जिसे कथमपि भुलाया नहीं जा सकता । अन्त में मैं यही कहना चाहूँगी कि ऋषि दयानन्द के स्त्रीशिक्षा विषयक पवित्र लक्ष्य को पूर्ण करने के लिये आज भी हमें अपेक्षित परिवर्त्तनों के साथ-२ पूर्ण जागरूक रहना है, ऐसा न हो कि शिक्षा का उद्देश्य मात्र स्कूली पाठ्यक्रम को पढ़ लेना रह जाये और हम आर्ष पाठ्यक्रम के ज्ञान से शून्य ही बने रहें । इसके साथ-२ हमें उन स्त्रीशिक्षा-द्वेषियों की चुनौतियों का भी बलपूर्वक उत्तर देते रहना होगा जो आज भी सामाजिक एवं राष्ट्रीय उन्नति के प्रति उल्लू के सदृश आँखें बन्द करके बैठे हैं ।

---

१. पं० नाथूराम शङ्कर शर्मा के विषय में हिन्दी काव्य शास्त्र के अच्छे समीक्षकों ने यह स्वीकार किया है कि शङ्कर जी के काव्य पिङ्गल शास्त्रोक्त गुणों से पूर्ण युक्त एवं श्रेष्ठ हैं ॥

२. द्र० हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ४२५ ॥

— ० —

नारी को वेदाध्ययन की सुविधा
महर्षि दयानन्द की देन

'नारी को मानवीय मूल्यों से भी वञ्चित किया जाना' सम्भवतः इतिहास का सर्वाधिक दर्दनाक एव आश्चर्य-जनक कथानक है। सहस्राब्दियों तक इतनी गहरी यातनाओं एवं घुटन की स्थिति को स्त्रियों के अतिरिक्त शायद ही किसी ने झेला हो। 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' कह कर पुराण के ठेकेदारों ने नारी को वेदाध्ययन से सर्वथा वञ्चित ही नहीं कर दिया अपितु यह भी कहा कि "स्त्री और शूद्र यदि वेद के शब्द सुन लें तो उनके कान सीसे और लाख से भर देने चाहियें।" अभागी स्त्री को जब वेद पढ़ने का अधिकार ही नहीं रहा तो वह एक स्वाभाविक धार्मिक क्षुधा की पूर्त्यर्थ झूठे मठों मन्दिरों में पण्डे-पुजारियों बैरागी-साधुओं के पास ही घूमने लगी जहाँ इनको धर्म भ्रष्ट भी किया और इन्हें पैर की जूती तथा नरक का द्वार भी कहा गया। इस क्रूरता और आततायीपन के खाके को याद कर आज तो मन सिहर उठता है। जहाँ हजारों लाखों ललनायें बेचारी देवदासी प्रथा के रूप में जघन्य वृत्ति वाले पण्डों की भेंट चढ़ गईं, लाखों सती प्रथा के रूप में जीवित पति की चिता पर जलने को बाध्य हुईं और हजारों को मुल्लों पादरियों के बीच फँस कर सर्वस्व गँवाना पड़ा वहीं क्रूर अभिशाप से अभिशप्त करोड़ों वनिताओं को जन्म जन्मान्तर तक सास, ननद, देवर, पति के कठोर भीषण वाग्बाणों एवं कठोर दण्ड प्रहारों तथा निर्मम यातनाओं को भी सहन करते हुवे जीना पड़ा, , पर हा! उनके इस करुण क्रन्दन पर जिसे देखकर पत्थर भी विगलित हो उठे किसी तथा कथित सुधारक का हृदय पसीजा नहीं। पथ प्रदर्शन की अपेक्षा सबने उसे मूक पशुवत् बनकर सब कुछ सहन करने के लिये ही विवश किया। इस अवस्था में बेचारी स्त्री अपने सच्चे स्वरूप एवं स्वाभिमान के कण को जीवित रख ही कैसे सकती थी।

अतीत में बड़ी लम्बी दृष्टि डालने पर तथा इतिहास को सावधानी से खोजने पर भी हमें ऋषिवर दयानन्द के अतिरिक्त ऐसा कोई भी व्यक्ति प्राप्त नहीं होता जो नारियों की इस दीन हीन परिस्थिति को देखकर हृदय से तिलमिला उठा हो और जिसने उनके उत्थान का सही रास्ता 'वेदाध्ययन' को ही बताया हो। महर्षि दयानन्द ने 'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः' (यजु. २६।२) आदि मन्त्र प्रस्तुत करते हुवे जहाँ यह बताया कि परमेश्वर ने स्त्री पुरुष आबाल वृद्ध सबको वेद पढ़ने का अधिकार दिया है तथा स्त्री पुरुष प्रत्येक को यज्ञोपवीत पहिनने[1] योगाभ्यास[2] एवं गायत्री मन्त्र जाप करने का अधिकार है वहीं यह कार्य क्रियात्मक रूप में भी करने का पूरा-पूरा प्रयत्न किया। ढोंगी सधुक्कणों के समान चेली[3] चेला बनाना उनके परमप्रिय वेदोक्त सिद्धान्त में नहीं था अतः ऐसे अवसर आने पर वे प्रायः स्त्रियों को कह देते थे कि "तुम सब जाओ

---

१. स्त्रियों को भी विद्या सम्पादन का अधिकार पहिले था और उसके अनुकूल उनका व्रतबन्ध संस्कार (उपनयन संस्कार) पूर्वकाल में करते थे। (उपदेश मञ्जरी व्या. ७ यज्ञ संस्कार विषय)

२. स्त्री भी इसी प्रकार योगाभ्यास करे (स. प्र. तृ. स. प्राणायाम शिक्षा)

३. साधु वैरागियों के चेली चेला बनाने की घृणित प्रवृत्ति का ही परिणाम देवदासी प्रथा के रूप में सामने आया था। दुर्भाग्य है कि आज भी सुदूर दक्षिण में यह प्रथा अभी भी समाप्त नहीं हुई है। १ जुलाई १९८० के नवभारत टाइम्स में "प्रतिबन्ध लगाया जाये" शीर्षक से जो सम्पादकीय वक्तव्य प्रकाशित है उसे पढ़कर किस भारतीय का मस्तक शर्म से नहीं झुक जायेगा। आज भी देवी येलप्पा की सेवा के नाम पर ५ हजार के लगभग कन्यायें प्रतिवर्ष मन्दिरों को सौंपी जाती हैं और बाद में वेश्यालयों में बेंच दी जाती हैं। १९३४ में 'देवदासी संरक्षण' कानून बना किन्तु इस कानून के अन्तर्गत किसी महन्त पर आज तक मुकदमा नहीं चला। यह आश्चर्य

अपने-२ पतियों को भेजना हम उन्हें उपदेश देंगे वे तुम्हें समझा देंगे।" पर उनका हृदय इस बात के लिये व्याकुल रहता था कि महिलायें महिलाओं के बीच में कार्य करें जिससे उनकी दुर्दशा दूर हो इस हेतु उन्होंने कतिपय उपयुक्त महिलाओं को स्त्रियों के बीच सुधार का कार्य करने के लिये प्रेरित किया। जिनमें सर्वप्रथम पञ्जाब प्रान्त के होशयारपुर जिले की निवासिनी पुण्यशीला माई भगवती का नाम आता है। यह माई युवावस्था में ही वैराग्य-वती हो गई थी और गैरिक वस्त्र धारण कर नवीन वेदान्त का प्रचार करती हुई घूमती थी। परमेश्वर की अतिशय अनुकम्पा हुई, सत्यार्थप्रकाश राजा जयकृष्ण जी के प्रबन्ध से छपकर प्रकाशित ही हुआ था कि किसी प्रकार इन माई के हाथ वह लग गया। आद्योपान्त पढ़ा जिससे उनके 'अहं ब्रह्मास्मि' वाले नवीन वेदान्त के विचार ध्वस्त हो गये। इन माई की ऋषि दयानन्द पर असीम भक्ति हो गई और ये उनके दर्शनार्थ अपने भाई को लेकर बम्बई जा पहुँचीं। ऋषिवर के दर्शन प्राप्त कर एवं उनसे वार्त्तालाप कर उन्होंने अपने आपको धन्य माना। महर्षि दयानन्द ने उन्हें उपदेश दिया—

"स्त्री जाति में विद्या का बड़ा भारी अभाव है। उनको कर्त्तव्या-कर्त्तव्य का कुछ भी बोध नहीं। यदि आप पुण्योपार्जन करना चाहती हो तो अपने प्रान्त में जाकर अपनी बहिनों में विद्या का प्रचार करो। जो कुछ जानती हो वही उन्हें सिखाने लग जाओ।"

है। क्या ये हत्या से भी बढ़कर पाप नहीं? इसे बन्द करने के लिये सनातन धर्म के ठेकेदारों करपात्री जी जैसों को तो वहाँ जाकर अपनी जान दे देनी चाहिये पर इन्हें तो केवल अपने दूध मलाई की चिन्ता है! एक ओर ये कन्यायें इनके लिये अस्पृश्य हैं तो दूसरी ओर इनको ही महन्तों की घृणित दुर्वासनाओं का शिकार बनना पड़ता है!

(यह लेख १९८० के प्रारम्भ में लिखा गया था।—प्रज्ञा)

इस उपदेश को श्रवण कर माई भगवती बम्बई से अपने प्रान्त में आईं और स्त्री-सुधार कार्य में जुट गईं।

इसी प्रकार महर्षि ने संस्कृत की विदुषी रमाबाई को भी यह प्रेरणा दी थी कि—"आप संस्कृत की अद्वितीय विदुषी हैं। आप लोक कल्याण में तत्पर हों और स्त्री जाति को जो अतिशोचनीय दशा में है उससे उनको शिक्षा देकर उबारें।" स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में ऋषिवर के विचार बड़े दृढ़ और स्पष्ट थे—एकबार एक भक्त ने स्वामी जी से प्रश्न किया कि लोग कहते हैं कि स्त्रियों को पढ़ाने से उनमें दुष्कर्म बढ़ जायेंगे, तो स्वामी जी ने उसका उत्तर यह दिया कि—"यदि शिक्षा का परिणाम पाप हो तो पुरुषों को भी अशिक्षित ही रहना चाहिये।"

सत्यार्थ-प्रकाशादि ग्रन्थों में शिक्षा एवं पाठचक्रम के सम्बन्ध में यद्यपि महर्षि ने बहुत कुछ लिखा किन्तु वे स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में पृथक् एक पुस्तक लिखना चाहते थे यह उनके जीवन चरित्र के अध्ययन से पता चलता है। देश का परम दुर्भाग्य था कि ऋषिवर स्त्री शिक्षा सम्बन्धी उस महत्त्वपूर्ण पुस्तक को लिख न सके और काल कवलित हो गये। वे नारी जाति के लिये क्या विशेष शिक्षायें देना चाहते थे शायद उसे सूक्ष्म रूप में उनके आर्योद्देश्यरत्नमाला जैसी छोटी पुस्तक से लेकर वेदभाष्य जैसे बृहत्काय महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों से समेटा जा सकता है। महर्षि के वेदभाष्य में उपमार्थक जो अर्थ हैं उन्हें देखने से कोई भी यह बोध कर सकता है कि स्वामी जी महाराज वेदार्थ के माध्यम से समग्ररूपेण स्त्री जाति के कर्त्तव्याकर्त्तव्य को कह देना चाहते हैं, चाहे वह अभिधार्थ से हो या उपमार्थ से। उदाहरणार्थ इस संक्षिप्त लेख में एक दो वेदार्थ प्रस्तुत हैं। मन्त्र है—

व्यञ्जिभिर्दिव आतास्वद्योदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन ॥ (ऋ० १।११३।१४)

इस मन्त्र में प्रातःकालीन वेला उषःकाल का वर्णन है किन्तु महर्षि दयानन्द वाचकलुप्तोपमालंकार कहकर मन्त्र का भावार्थ प्रस्तुत करते हैं—

"जैसे प्रातः समय की वेला दिशाओं में व्याप्त है वैसे कन्या लोग विद्याओं में व्याप्त होवें वा जैसे यह उषा अपनी कान्तियों से शोभायमान होकर रमणीय स्वरूप से प्रकाशमान रहती है वैसे यह कन्याजन अपने शील आदि गुण और सुन्दर रूप से प्रकाशमान हों जैसे यह उषा अन्धकार का निवारण रूप प्रकाश को उत्पन्न करती है वैसे ये कन्या जन मूर्खता आदि का निवारण कर सुसभ्यतादि शुभ गुणों से सदा प्रकाशित रहें।"

ऋषिवर के इन शब्दों में नारी के प्रति उमड़ती हुई यह भावना स्पष्ट सामने आती है कि पुत्रियों को विदुषी बनाना चाहिये और आडम्बरों तथा पाखण्डों को दूर करने के लिये कटिबद्ध होना चाहिये।

एक अन्य मन्त्र पर ऋषिवर उपमार्थ से ही नारी की सामाजिक महत्ता का प्रतिपादन 'विश्ववारा' शब्द से जिसका अर्थ 'विश्व समस्त कल्याण का वरण करने वाली है' करते हैं अर्थात् उनका कहना है कि नारी की उत्कृष्ट स्थिति एवं सम्मान के बिना समाज एवं राष्ट्र की कोई स्थिति नहीं बन सकती है। सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है—

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥
(ऋ० १।११३।१९)

मन्त्र का भावार्थ ऋषि के शब्दों में निम्न है—

.........."स्त्री सम्बन्ध से उत्पन्न हुवे दुःख के तुल्य इस संसार में कुछ भी बड़ा कष्ट नहीं है उससे पुरुष सुलक्षणा स्त्री की परीक्षा

करके पाणिग्रहण करे और स्त्री को भी योग्य है कि अतीव हृदय के प्रिय प्रशंसित रूप गुण वाले पुरुष का ही पाणिग्रहण करे।"

अब ये स्त्री सम्बन्धी कष्ट स्त्री के विदुषी होने पर ही दूर हो सकते हैं अतः उनका पण्डिता बनकर विश्ववारा बनना परम आवश्यक है, यह यहाँ ऋषिवर का तात्पर्यार्थ है। पाठक देखें— कहाँ वेद की नारी के लिये यह पवित्र उक्ति और कहाँ भागवत पुराण जैसे भ्रष्ट ग्रन्थ जिनमें नारी को "नव नवमभीप्सन्त्यः पुंश्चल्यः स्वैरवृत्तयः" (भाग० ९।१४।३८) कहते हुवे पुंश्चली तक कह डाला है तथा स्वेच्छाचारिणी तक बना दिया है।

आदर्श पत्नी एवं कर्त्तव्यनिष्ठ माँ के स्वरूप पर भी वेदभाष्य के माध्यम से महर्षि दयानन्द ने अति उत्तम प्रकाश डाला है। उन मनोहारी वेदार्थों को मुग्ध-भाव से देखते ही बनता है। मैं कह सकती हूँ कि स्त्रीशिक्षा के सम्बन्ध में पृथक् पुस्तक न लिख करके भी महर्षि दयानन्द ने हमें इतनी विपुल सामग्री प्रदान कर दी है कि जिसकी कोई तुलना नहीं। इन बिखरे सूत्रों को बटोर लेना हमारे लिये अमृतसम हो सकता है।

इस प्रकार विश्व महिला सम्मेलन हो या पारिवारिक गृहिणी की समस्या महर्षि दयानन्द का स्थान नारी जागरण के रूप में अद्वितीय एवं अतुलनीय है इसे समझकर भी न समझना अन्धकार से ही गुजरना होगा, क्योंकि उनसे पूर्व "नारी को वेद पढ़ने का पूर्ण अधिकार है" ऐसा स्पष्ट शंखनाद करके नारी के दकियानूसी से जकड़े बौद्धिकता के एक-२ तन्तुओं को खोलने का किसी ने प्रयास ही नहीं किया।

जिस नारी की चीत्कार को हजारों वर्षों से बहरे श्रवणरन्ध्रों ने आज तक न सुना था और मनमाने वाक्य घड़कर उसे सभी अधिकारों से अपदस्थ ही नहीं किया था अपितु भीषण अत्याचार

भी ढाया था उसे महर्षि दयानन्द ने सुना ही नहीं खूब गहराई से अनुभव किया और महर्षि दयानन्द को इसी स्थिति में बड़ी व्याकुलता से टहलते हुवे देखकर जब कुछ भक्तों ने विनयपूर्वक पूछा—महाराज ! आज क्या कोई वेदना है जो आप इस प्रकार व्याकुल हैं ? ऋषिवर ने एक ही बात कही--

"विधवाओं के हृदय विदारक क्रन्दन एवं गोवध के जघन्य पाप से भी बढ़कर क्या कोई वेदना हो सकती है ?" ऋषिवर के इन शब्दों में जो नारी के लिये गहरी करुणा छिपी है वह स्पष्ट है ।।



स्त्री-शिक्षा का महत्त्व

किसी राष्ट्र को सशक्त एवं आत्म-निर्भर बनाने का सर्वोत्तम उपाय स्त्री-शिक्षा है। राष्ट्र की सशक्तता का प्रमाण हथियारों से लैस होना नहीं, बल्कि राष्ट्र का नैतिक चरित्र है। कोई भी छुरी, बन्दूक पिस्तौल आदि रखकर भी अपने आपको सुरक्षित नहीं कह सकता अतः सात्त्विक वृत्तियां, आत्मनिष्ठा ही राष्ट्र को सबल बना सकती है यह मानना ही होगा। प्रश्न यह है कि इस आत्मनिष्ठा का मूलस्रोत हमें कहाँ प्राप्त होगा ? उत्तर भी स्पष्ट है कि उस परमेष्ठी ने सृष्टि रचना कर प्रजा पालन का भार जिसको सर्व-प्रथम सौंपा वही दिव्य शक्ति सम्पन्न नारी सन्तान को आत्मनिष्ठ एवं सुसंस्कारित बना सकती है। परमात्मा ने सबको उसकी क्षमतानुसार ही कार्य सौंपा है। इस प्रकार जिस नारी के कन्धों में प्रजा पालन रूपी राष्ट्रीय गुरुतर भार हो उसे सुशिक्षित होने की आवश्यकता नहीं यह प्रश्न ही कैसे उठ सकता है ? किन्तु बीच के काल में यही हुआ। नारियों को शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं उनको बच्चे उत्पन्न करना और गृह कार्य ही तो करना है कहीं नौकरी तो करनी नहीं यदि ये पढ़ जायेंगी तो ऊटपटाङ्ग चिट्ठियाँ लिखा करेंगी इत्यादि कहकर नारियों की शिक्षा का कूपमण्डूकों ने डटकर विरोध किया। श्रीशंकराचार्य जैसे प्रतिष्ठाप्राप्त धर्माचार्यों तक ने स्त्री के लिये बृहदारण्यकोपनिषद् के 'अथ य इच्छेत् दुहिता मे पण्डिता जायेत" (बृह० ६।४।१७) इस वाक्य के पण्डिता शब्द का भाष्य करते हुवे लिखा—"दुहितुः पाण्डित्यं गृहतन्त्रविषयमेव वेदेऽनधिकारात्" अर्थात् कन्या को वेद पढ़ने का अधिकार नहीं अतः उसको पण्डिता बनाने का अर्थ है गृहस्थ के कार्यों की शिक्षा देनी। स्त्री शिक्षा के सम्बन्ध में तत्कालीन समाज एवं धर्माधि-कारियों के अत्यन्त हीन एवं तुच्छ विचार हो गये थे इसलिये

पण्डिता शब्द का मात्र गृहस्थ के कार्यों में शिक्षित होना अर्थ किया गया यह प्रमाण ही पर्याप्त है।

परिणाम सामने आया राष्ट्र निर्बल हो गया। देश गुलाम होकर पिटा ही नहीं अपने गुलामी के जीवन से उसने खुशामद पसन्द होकर तादात्म्य भी स्थापित कर लिया। सत्यनिष्ठा आदि आचरण ऐतिहासिक कथायें मात्र बनकर रह गईं। अत्यन्त यातनाओं से गुजरने के पश्चात् देश का भाग्य जागा और राष्ट्रोद्धारक ऋषि दयानन्द का उद्भव हुआ। उन्होंने अकाटच प्रमाणों और युक्तियों के आधार पर यह सिद्ध कर दिया कि स्त्री-शिक्षा आवश्यक ही नहीं अनिवार्य है। इस मध्ययुग के गिरे हुवे काल से पूर्व की स्त्रियाँ प्रभूत विद्या-सम्पन्न हुआ करती थीं। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा आदि ब्रह्मवादिनी ऋषिकायें इसकी प्रमाण हैं। इतना ही नहीं वेद पढ़ने का अधिकार स्त्रियों को न देने वाले श्री शंकराचार्य जी के समक्ष मण्डनमिश्र की विदुषी पत्नी उभयभारती मण्डनमिश्र के हार जाने पर स्वयं शास्त्रार्थ के लिये डटी थी। तब शंकराचार्य जी के लिये भारती से पीछा छुड़ाना मुश्किल हो गया और वे कह उठे—

यदवादि वादकलहोत्सुकतां प्रतिपद्यते हृदयमित्यबले।
तदसाम्प्रतं नहि महायशसो महिलाजनेन कथयन्ति कथाम्॥

(शंकरदिग्विजय सर्ग ९।५९)

अर्थात् हे अबले! तुम मुझसे शास्त्रार्थ करना चाहती हो किन्तु यशस्वी पुरुष महिलाओं के साथ शास्त्रार्थ नहीं करते। भारती भी सहज में उन्हें छोड़ने वाली नहीं थी उसने कहा—

अत एव गार्ग्यभिधया कलहं सह याज्ञवल्क्यमुनिराडकरोत्।
जनकस्तथा सुलभया ऽबलया किममी भवन्ति न यशोनिधयः॥

।(सर्ग ९।६१)

अर्थात् शंकराचार्य जी ! आपको अपने पक्ष की रक्षा के लिये शास्त्रार्थ करना ही होगा। क्या गार्गी के साथ याज्ञवल्क्य ने तथा सुलभा के साथ जनक ने शास्त्रार्थ नहीं किया था ? क्या ये यशस्वी पुरुष नहीं थे ?

इन सभी ऐतिहासिक तथ्यों का उद्घाटन करते हुवे ऋषि दयानन्द ने वेद पठनादि अपने अधिकारों से च्युत नारी को समस्त अधिकारों से युक्त कराया। दयानन्द ने वह करके दिखाया जो आज तक बड़े-बड़े दिग्गज विद्वान् एवं सुधारक नहीं कर सके थे। इधर देशमें स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये क्रान्ति की लहर को दौड़ाने वाले कुछ राष्ट्रनायकों ने भी अनुभव किया कि यह क्रान्तिरूपी अनुष्ठान हमारा तब तक सफल नहीं हो सकता जब तक नारियों का पवित्र योगदान इसमें न हो अतः उन्होंने भी रूढ़िग्रस्तताओं को छोड़कर स्वतन्त्रता यज्ञ में भाग लेने के लिये उनका आह्वान किया। यह नारी की असीम क्षमता और साहस का ही परिचायक कहा जा सकता है कि वह युगों-युगों तक दासता की अभ्यस्त होते हुवे भी अपना आह्वान सुनते ही सजग हो उठी और वह इस यज्ञ में भी पीछे न रही। ऐसी अदम्य साहस की प्रतिमूर्त्ति अदिति स्वरूपा नारी को शिक्षा का अधिकार नहीं या वेद पढ़ने का अधिकार नहीं यह कहते हुवे जब आज भी मैं दकियानूसी पण्डितों के मुख से सुनती हूं तो यही कहना पड़ता है कि ये पण्डित होकर भी दिवान्ध ही हैं।

वेदों में माता के कर्त्तव्यों का विशद वर्णन आता है। ऋग्वेद मं० ४ सू० १८ मं० ५ में कहा है कि सूर्यसम तेजस्विनी माता सन्तान की गुहा = बुद्धि में पराक्रम को प्रविष्ट कराये दुष्टाचरणों को दूर करे।[1] इसी सूक्त के प्रथम मन्त्र में सन्तानों को उपदेश दिया गया है कि चाहे कुछ हो जाये वे अपनी माता का अपमान कभी न करें[2]।

१. अवद्यमिव मन्यमाना गुहाकरिन्द्रं माता वीर्येणा न्यृष्टम्।
अथोदस्थात्स्वयमत्कं वसान आ रोदसी अपृणाज्जायमानः॥
२. नतश्चिदा जनिषीष्ट प्रवृद्धो मा मातरममुया पत्तवे कः।

माता यह शब्द बड़ा प्रिय है, इसकी महिमा अपार है। यह राष्ट्र निर्माण का मेरुदण्ड है। माता के द्वारा दिये हुवे संस्कारों का सन्तान के जीवन पर कितना गहरा प्रभाव पड़ता है यह महापुरुषों की जीवनियों को देखकर सहज ही जाना जा सकता है। इन सब तथ्यों को देखते हुवे यह कहने में कोई सन्देह नहीं रह जाता कि "पुत्री" जिसे आगे चलकर सुयोग्य पत्नी एवं माता का रूप धारण करना है अथवा विरक्तवृत्ति धारण कर भी समाज को आलोक देना है उसका गठन एक प्रकार के विशेष संस्कारों के साँचे में ढालकर करना ही होगा। जिस भवन को विशाल एवं दृढ़ बनाना है उसकी नींव पक्की करनी ही होगी इसीलिये ऋषि दयानन्द ने अपने ग्रन्थों में नारी शिक्षा पर इतना बल दिया है।

आज कुछ लोग नारी-जागरण के नाम पर पुरुषों के समान अधिकार की बड़ी पुकार करते हैं। यह बात भी कुछ २ साम्यवाद जैसी ही है। जिस प्रकार साम्यवाद का अर्थ यह करना कि "समाज हित की दृष्टि से बुद्धिबल के भिन्न २ होते हुवे भी समान वितरण व्यवस्था की जाय" यह गलत होगा, उसी प्रकार स्त्री पुरुष में भेद होते हुवे भी पुरुषों के समान नारियों को अधिकार मिले, इसका यह तात्पर्य लगाना कि नारियों का पुरुषीकरण कर दिया जाये गलत होगा। जिस प्रकार साम्यवाद का अर्थ यह उचित होगा कि आवश्यकतानुसार प्रत्येक को उपभोग वस्तु सुलभ कराई जाये उसी प्रकार समानाधिकार की माँग करने वालों को यह कभी नहीं भूलना चाहिये कि नारी के कर्त्तव्य और मर्यादायें भिन्न हैं तथा पुरुष के भिन्न हैं अतः उसी अनुरूप प्रत्येक को अपना प्राप्तव्य मिलना चाहिये। समान अधिकार का मतलब रहन-सहन, उठने-बैठने, पहरावे उठावे में उनका एकीकरण कर देना नहीं है बल्कि विद्या-अर्जन करने, संन्यास वानप्रस्थादि प्रत्येक आश्रमों में प्रवेश करने, विचारों के आदान प्रदानादि में स्त्रियों का भी पूरा-पूरा अधिकार होगा यह

है। यह न भूलना चाहिये कि समान अधिकार से तात्पर्य यदि पुरुष के बराबर प्रतिष्ठा या महिमा प्राप्त करना लिया जाये तो वेदों में तो नारी को पुरुष के समान क्या पुरुषों से भी कहीं अधिक महिमा-मय कहा है। नारी को ब्रह्मा[1] जैसे उत्तम विशेषणों तक से विभूषित किया गया है।

आज सहशिक्षादि का ऐसा बुरा प्रभाव नारियों पर पड़ता जा रहा है कि उनके रहन-सहन, वेश-विन्यास सब बदलते जा रहे हैं। आज राह चलते पुरुष और स्त्री में कोट पैन्टादि वेश एवं केश कर्त्तनादि सभी समान होने के कारण यह परिचय प्राप्त करना कि इसमें कौन स्त्री एवं कौन पुरुष है कठिन हो गया है। निर्लज्जता एवं धृष्टता अब आँखों में समाकर अंग अंग को आपूरित करती जा रही है। गौरव पूर्ण मातृत्व की न चाह है न उत्कण्ठा। कई जगह तो ठगी लूट और मक्कारी करती हुई स्त्रियाँ भी पकड़ी जा रही हैं और गौरवशाली भारत के समक्ष यह प्रश्न तीव्रतर होकर उभरता जा रहा है कि क्या यही नारी भारत की दुर्गा और सीता का प्रतिमान है? ऐ बूढ़े भारत! तूने इस देश की नारी के उस चरित्रबल को भी देखा है जब राजपूतानियों ने परपुरुष के द्वारा कुदृष्टि से हाथ तक का स्पर्श किये जाने पर उस हाथ को यह कहकर तीव्र दुधारे से काट दिया था कि "यह हाथ अब पति-सेवा के योग्य नहीं रहा।" तूने सीता माता की पवित्रता एवं आत्मबल तथा सभा को धर्षित करने वाला शकुन्तला का तेज[2], तथा पद्मिनी का जोहर व्रत

---

१. अधः पश्यस्व मोपरि सन्तरां पादकौ हर।

मा ते कशप्लकौ दृशन् स्त्री हि ब्रह्मा बभूविथ ॥ (ऋ० ८।३३।१९)

२. शकुन्तला ने भरी सभा में दुष्यन्त को उसके भूल जाने का बहाना करने पर जो फटकार सुनाई है वह पढ़ने योग्य है (म० भा० आदि पर्व)॥

भी देखा है पर आज यह सब क्यों स्वप्न होता जा रहा है ? नारी उस सरणी की अनुगामिनी क्यों बनती जा रही है जिसकी कोई कगार नहीं। यह चिन्तनीय विषय है।

संक्षेप में इसका कारण हमारी पाश्चात्य कुशिक्षा ही है जिसके हम अनुगामी बिना सोचे समझे हो रहे हैं। हमें अपनी वैदिक पद्धतियों को अपनाना होगा। घर-घर में उसका प्रचार और प्रसार करना होगा। फैशनपरस्ती की बाढ़ को रोककर मनुष्य के आत्मिक ढांचे को सुपुष्ट बनाना होगा। समय रहते ऐसी वैदिक मर्यादा सम्पन्न शिक्षा को बड़े यत्न से नारियों में पुनः विकसित करने की आवश्यकता है अन्यथा शिक्षा का मूल उद्देश्य हमसे बहुत दूर निकल जायेगा और हमें आँसू बहान पड़ेंगे।

—:०:—

इसी प्रकार सत्य की महिमा का जो व्याख्यान उसने यह कहकर किया है कि—अश्वमेधसहस्रं च सत्यं च तुलया धृतम्।

अश्वमेधसहस्राद्धि सत्यमेव विशिष्यते ॥

यह पूरा प्रकरण देखने योग्य है ॥

वैदिक आदर्शों का विवाह

संस्कारों में सर्वाधिक सार्वभौम एवं अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान विवाह संस्कार का है। सम्भवतः यही कारण है कि कतिपय गृह्य-सूत्रों का प्रारम्भ विवाह संस्कार के वर्णन से ही होता है। क्रमशः वैदिक आदर्शों के ह्रास होने के कारण पवित्र विवाह संस्कार की प्रक्रियाओं में गौरीगणेश पूजन, नवग्रह पूजा आदि कल्पित विधियों का ही समावेश नहीं हुआ अपितु कोर्ट मैरिज़, लव्ह मैरिज़ दहेज़ प्रधान (विवाह) आदि नानाविध पद्धतियों का भी अन्तर हुआ किन्तु हर अवस्थाओं में यह विवाह संस्कार मानव जीवन के साथ अपनी अक्षुण्ण सत्ता को हर काल एवं देश में बनाये रखा है यह बात जहाँ मनुष्य की पारिवारिक आवश्यकता की सूचना देती है वहीं विवाह संस्कार के महत्त्व की प्रतिपादक भी है।

१६ संस्कारों में विवाह संस्कार ही एक ऐसा संस्कार है जिससे दो प्राणी ही नहीं अपितु समूचा राष्ट्रीय-जीवन प्रभावित होता है क्योंकि विवाह का मूल उद्देश्य श्रेष्ठ सन्तति लाभ करना है अतः राष्ट्रीय विकास का कारण आदर्श विवाह हुआ। स्पष्ट है कि पति-पत्नी के उच्च आदर्शवान् होने पर ही राष्ट्रीय धरातल ऊपर उठेगा अत एव महर्षि दयानन्द ने वर वधू के लिए गुण, कर्म, स्वभाव के अनुरूपता की बात बड़े जोर देकर कही है। गुण, कर्म, स्वभाव के परस्पर भिन्न होने से पति पत्नी का जीवन ही कलहमय दुःखपूर्ण नहीं होगा अपितु सन्तान का निर्माण भी उत्तम न हो सकेगा परि-णामस्वरूप राष्ट्रीय स्तर निर्बल होगा। इस प्रकार विवाह संस्कार का महत्त्व अन्य संस्कारों की अपेक्षा भिन्न एवं विशेष प्रभावशाली इसलिये भी है कि वह व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त राष्ट्रीय-जीवन को प्रभावित करता है।

विवाह के आदर्श भावनामूलक हैं। त्याग को आदर्श बनाकर सान्निध्य की भावना को उजागर कर देना इस संस्कार का तात्पर्य

है किन्तु जब मानवीय आदर्शों ने पलटा खाया भोगवाद प्रधान हो गया तो आर्थिक पाशविकता भी कैसे पीछे रह सकती है ? एक समय था जब कन्यायें पैदा होते ही मार दी जाती थीं और अब माता-पिता के द्वारा भली-भाँति पालित एवं शिक्षित किये जाने के पश्चात पति अथवा सासों ननदों के द्वारा मार दी जाती हैं बात एक ही है नारी की गिरी हुई अवस्था वहीं की वहीं है।

विवाह के अनन्तर प्रत्येक कुलवधू अपने पतिगृह में गार्हपत्य[1] अग्नि के रूप में ही प्रवेश करती है और सब प्रकार के सुखों के भण्डा उस परिवार के लिये अपनी त्यागमयी भावना से अर्पित करती है। क्या यह गृहपत्नी के लिये कम महत्त्वपूर्ण बात है ? इससे भी अधिक परिवार के लिये वह क्या दे सकती है जिसके अभाव में उसे कोसा जाये अथवा बलिदान तक हो जाना पड़े। विवाह की इन सभी विषम परिस्थितियों में कारण आज की पीढ़ी के मानव की मानसिक अपरिपक्वता दूषित एवं भौतिकता प्रधान शिक्षा तथा उच्छृंखल रहन-सहन एवं खान-पान हैं। वैदिक विवाह के आदर्शों की कल्पना भी कर पाना आज के मानव के लिये दुष्कर हो चुका है। वेद में अनेकों सूक्त एवं मन्त्र हैं जिनमें गार्हस्थ्य जीवन एवं वैवाहिक आदर्शों का विशद वर्णन आता है उदाहरणार्थ ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५ वें सूक्त को लीजिये जिसमें वैवाहिक आदर्शों की एक झाँकी मन्त्रों द्वारा प्रस्तुत की गई है जिसमें आलंकारिक वर्णन के द्वारा उन मृदुल किन्तु तथ्यपूर्ण भावनाओं को प्रस्तुत किया गया है जिनकी आवश्यकता विवाहेच्छुक जनों में होनी चाहिये। इस वर्णन का आधारभूत मन्त्र है -

सोमो वधूयुरभवत् अश्विनास्तामुभा वरा।
सूर्यां यत्पत्ये शंसन्तीं मनसा सवितादात्॥ (ऋ० १०।८५।९)

---

१. गार्हपत्य, आहवनीय, दक्षिणाग्नि ये तीन अग्नियाँ हैं जिनमें गार्हपत्य अग्नि प्रत्येक गृहस्थ के यहाँ स्थित करने का विधान है जिसमें सभी संस्कार किये जाते हैं। यह गृह्य अग्नि विवाह संस्कार से ही लायी जाती है॥

अर्थात् सोम = चन्द्रमा वधूकी इच्छा वाला = विवाह की कामना करने वाला हुआ यह जानकर सविता = सूर्य ने अपनी पुत्री सूर्या अर्थात् किरण जो मनसा पत्ये शंसन्तीम् = जो मन से पति की इच्छा वाली अर्थात् गृहस्थाश्रम में प्रवेश की अभिलषुक हो चुकी थी उसे सोम = चन्द्रमा को दिया यानी विवाह किया। अब सूर्य की बेटी सूर्या यानी उसकी किरणों का जब विवाह चन्द्रमा के साथ हुआ तो सूर्य ने अपनी पुत्री को विवाह में दहेज के रूप में क्या-२ दिया यह वर्णन सूक्त के अन्य मन्त्रों में देखें—

रैभ्यासीदनुदेयी नाराशंसी न्योचनी।
सूर्याया भद्रमिद्वासो गाथयैति परिष्कृतम् ।। (१०।८५।६)

अर्थात् रैभी = पति की गुणग्राहक बुद्धि सूर्या की अनुदेयी = साथ दी जाने वाली वस्तु थी नाराशंसी = मनुष्यों द्वारा प्रशंसित वाणी उसकी न्योचनी = सखी या सेविका थी तथा सूर्या बेटी के वस्त्र ऐसे थे जो उत्तम-२ गाथाओं से परिष्कृत कल्याणमय थे। इतना ही नहीं सूर्या ने जो अपनी आँखों में अञ्जन लगाया था वह भी अलौकिक था तथा उसका होलडाल = बिस्तरबन्द एवं सुहाग पिटारी भी विचित्र थी। मन्त्र कहता है—

चित्तिरा उपबर्हणं चक्षुरा अभ्यञ्जनम्।
द्यौर्भूमिः कोश आसीद्यदयात्सूर्या पतिम् ।। (१०।८५।७)

अर्थात्—चित्तिः = ज्ञान, सूर्या का उपबर्हण = बिस्तर बन्द था तथा ज्ञान का ही काजल उसने अपनी आँखों में डाल रखा था उसको जो सुहाग पिटारी दी गई उसका ऊपर का भाग द्यौलोक एवं नीचे का पृथिवी लोक था।

सूर्या बेटी को दिया हुआ अलौकिक दहेज सूर्या की बिदाई से पहिले ही उसके पिता सूर्य ने उसके पतिगृह में भेज दिया।[1]

सूर्या की बिदाई के वर्णन के प्रसङ्ग में अथर्ववेद में मन्त्र आया है—

कृत्रिमः कण्टकः शतदन् य एषः।
अपास्याः केश्यं मलमप शीर्षण्यं लिखात् ।।(अथ० १४।२।६८)

१. सूर्याया वहतुः प्रागात् सविता यमवासृजत्—१३ वहतु = दहेज ।।

इसका अर्थ है कि कृत्रिम काँटों से बना सैकड़ों दाँतों वाला कंघा जो केशों का मल निकाल दे वह भी बिदाई के समय सूर्या को दिया गया। सूर्या बेचारी के केश स्वच्छ रहें, जूँ आदि न पड़ जायें इसलिये कंघा दिया। तात्पर्य यह हुआ कि दहेज में माता-पिता को दैनिक प्रयोग की वस्तुयें अवश्य अपनी बेटी के साथ दे देनी चाहिये ताकि उनके अभाव में उसे कष्ट न हो किन्तु विलासिता के समानों के अम्बार लगाना उचित नहीं।

उपर्युक्त ऋग्वेद के मन्त्रों से यह भी शिक्षा मिलती है कि सूर्य ने अपनी बेटी को जिस प्रकार दहेज में ज्ञानरूपी बिछावन आदि सामान दिये उसी प्रकार मर्त्यलोक में भी लोगों को चाहिये कि अपनी बेटी को दहेज के रूप में सच्चा ज्ञान दें न कि फ्रिज, कार और टेलीविजन आदि। वरपक्ष वाले भी इसको ही अपना सौभाग्य समझकर वधू को प्यार से ग्रहण करें। इन मन्त्रों में जहाँ सुन्दर भौगोलिक वर्णन है वहाँ आलंकारिकता से इस उत्तम शिक्षा का भी बोध होता है, पूरा सूक्त इतना मनोरञ्जक है कि पढ़ते हुवे मनुष्य थकता नहीं। जिस समय सूर्या बिदा होती है तो उस समय उसका रथ किस प्रकार है इसका भी वर्णन देखें—

मनो अस्या अन आसीद्द्यौरासीदुत छदिः।
शुक्रावनड्वाहावास्तां यदयात्सूर्या गृहम्॥ (१०)

अर्थात्—सूर्या का अनः=रथ मनरूपी था जिस पर वह पतिलोक को जाती हुई बैठी। रथ की ऊपरी छत द्यौलोक (कामना) थी तथा रथ को ले चलने वाले दो दीप्त अनड्वाहौ=बैल थे। तात्पर्य यह है कि गृहस्थरूपी रथ को सदाचारी बलिष्ठ दो पति पत्नी ही खींच सकते हैं। ये दोनों रथ के वोढा ऋक् और सामरूपी ज्ञान से बँधे हुवे हैं जैसा कि अगले मन्त्र में कहा है—

ऋक्सामाभ्यामभिहितौ गावौ ते सामनावितः।
श्रोत्रं ते चक्रे आस्तां दिवि पन्थाश्चराचरः॥ (११)

तात्पर्य यह हुआ कि ऋग्वेद = विज्ञान एवं सामवेद[1] = उपासना इन दोनों की डोर से दाम्पत्य जीवन जुड़ा रहना चाहिये। ज्ञान और उपासना इन दोनों की परम आवश्यकता दाम्पत्य सूत्र के रूप में पति-पत्नी के लिये है। इसके अतिरिक्त सूर्या के रथ के चक्के वर के गुण को ग्रहण करने वाले श्रोत्र ही हैं, और कुछ नहीं। यह भी प्रकृत मन्त्र में बताया है अर्थात् पति-पत्नी को भूलकर भी अन्यों द्वारा परस्पर की निन्दा नहीं सुननी चाहिये न ही उस पर कान देना चाहिये अन्यथा दाम्पत्य प्रेम विष बन जायेगा। आगे के मन्त्र में रथ के चक्के अर्थात् कान बड़े पवित्र[2] हों यह भी कहा है।

वेद के इस संक्षिप्त वर्णन से मानव जीवन के लिये इतनी बड़ी देव दुर्लभ शिक्षा प्राप्त हो रही है कि जिसका कोई उपमान नहीं। वेद के अनुसार मानव धर्म की व्यवस्था में विवाह भोग का साधन कदापि नहीं है तभी तो वैवाहिक मन्त्रों में बार-२ वर-वधू से यही कहलाया जाता है कि प्रजां प्रजनयावहै, प्रजया वर्धयन्तु[3] अर्थात् हम उत्तम सन्तति को प्राप्त करें। कोई भी गृहस्थ अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगाकर भी गृहस्थ जीवन में एक दो से अधिक उत्तम सन्तान नहीं बना पाता क्योंकि उसके लिये अत्यन्त परिश्रम की आवश्यकता है इस प्रकार इस ध्येय के अनुसार परिवार का सक्षेपीकरण भी स्वयं हो जाता है।

---

१. ज्ञान और उपासना मूलक पति-पत्नी का जीवन हो इसीलिये विवाह संस्कार के समय भी वर वधू से यह वाक्य कहलाया जाता है—अमोऽहमस्मि सा त्वम्, सा त्वमस्यमोऽहम्। सामाहमस्मि ऋक्त्वं द्यौरहं पृथिवी त्वं तावेव विवहावहै……(पार० गृह्य० १।६।३)।

२. शुची ते चक्रे यात्या……(१०।८५।१२)

३. अथर्व० १४।१।५४ ॥

यह इस आर्यावर्त्त भूमि के लिये आज बड़े दुर्भाग्य की ही बात मानी जायेगी जो वैवाहिक आदर्श एवं उसकी प्रक्रियायें समाप्त प्राय होकर उसका स्थान भोड़ें नाच रंग तमाशे मादक पदार्थों का सेवन आदि लेते जा रहे हैं। मद्यपी दूल्हा जो मण्डप में बैठा हुआ है उससे वैवाहिक प्रतिज्ञा के छः मन्त्र यदि बुलवा दिये जायें तो उसके लिये वह क्या मूल्य रखते हैं। होश में खोये हुवे व्यक्ति का बयान कोर्ट में सही नहीं मानाजाता पर दुर्भाग्य है मण्डप में कही हुई उस मद्यपी मूर्ख वर की प्रतिज्ञा सही मानी जाती है !!! जिस गृहस्थ जीवन से इहलौकिक ही नहीं पारलौकिक उद्देश्य भी पूर्ण करना था आज उसकी यह दशा है कि ऐसे समारोहों में सभ्य व्यक्ति को जाने की भी इच्छा नहीं होती। पाश्चात्यों का अन्धानुकरण कर आज के लड़के लड़कियों की स्वेच्छाचारिता के कारण परिवारों की कड़ियाँ और भी टूट रही हैं, कहीं कोर्ट मैरिज् है तो कहीं तलाक है। सप्तपदी से पूर्व विवाह संस्कार में हुआ ग्रन्थि बन्धन क्या इतना शिथिल था जो विवाह के दस बारह वर्ष के पश्चात् ही खुल जाये? मानसिक बौनापन, अधैर्य, उतावलापन बढ़ता जा रहा है जिसका परिणाम दुःख ही दुःख है शान्ति का उपाय एकमात्र वैदिक शिक्षा है जिसे अपना कर ही बिखरे तन्तुओं को जोड़ा जा सकेगा।

—: ० :—

पारिवारिक सफलता की कसौटी

स्वस्थ व्यवहार

क्रिया की प्रतिक्रिया का सिद्धान्त जितना सच किसी वर्ग या समुदाय के लिये है उतना ही परिवार के लिये है। परिवार समाज की छोटी इकाई है किन्तु अन्तर्द्वन्द्व तो वही हैं। विशेष शारीरिक क्षमता वाला व्यक्ति अपने दर्पोन्माद में जिस समय न्यून बल वाले को अपदस्थ करता है उस समय उसे बौद्धिक विचार से युक्त नहीं कहा जा सकता। शक्तिशाली व्यक्ति इस प्रकार भय दिखाकर शरीर पर ही विजय प्राप्त करता है मन पर नहीं। किसी पर दबदबा जताने के लिये व्यवहार जितना कठोर और रुक्ष किया जाता है मन का घाव उतनी ही देर से सूखता है। विश्व में जिन जन-समुदायों ने विभिन्न देशवासियों पर विजय प्राप्त करने हेतु जितनी ही भीषण बर्बरता दिखाई और उन्हें अधीनस्थ कर लिया उतनी ही गहरी मात्रा में पराजितों के मन में घृणा का बीज उत्पन्न हुआ जो पीढ़ियों दर पीढ़ियों ही नहीं सदियों तक भी न सूख सका। वज्रमयी कठोरता का प्रतिरोध जब हम शक्ति की भाषा से नहीं कर पाते तो अन्यायी के प्रति मन के अन्तराल में छिपी उपेक्षा और ग्लानि उस स्थान को पूरा करती है। समय की परतें इस उपेक्षा और ग्लानि को गाढ़ा से गाढ़ा बना दिया करती हैं अतः दूसरों के प्रति हमारा व्यवहार प्रज्ञा के प्रभुत्व से मुक्त न हो यह नितान्त आवश्यक है।

समाज की ही तरह पारिवारिक कटुताओं एवं विषमताओं का मुख्य कारण किसी का किसी को अनुचित रीति से दबा लेना ही तो होता है। परिवार के मुख्य सदस्य पति-पत्नी ही हुआ करते हैं। इन दोनों में यदि बुद्धि सन्तुलन का अभाव हो एवं अपनी किसी भी विशेषता का [अहं दूसरे पक्ष को दबाकर रखने को विवश करे तो कालान्तर में परिणाम अतिदयनीय होता है। प्रायः देखने में

आया है कि अपने जीविकोपार्जनादि के गर्व में पत्नी के प्रति पति का व्यवहार जहाँ अत्याचार की सीमा तक पहुँच गया है वहाँ उनको इसकी गहरी कीमत चुकानी पड़ी है। उपेक्षा के अपमान को पीती हुई ऐसी पत्नी जब कई सन्तानों की माँ बनकर वृद्धावस्था की सीमा तक पहुँचती है तो उसका क्रोध मुखर हो उठता है। अब वह वृद्ध पति को निर्बल जानकर उसके समस्त कटु व्यवहारों की कसर अकेले ही नहीं निकालती बल्कि अपनी सन्तान को भी अपने पक्ष में खड़ाकर पति के सारे दुर्व्यवहारों का हिसाब चुकता करती है। पति असमर्थ और वह प्रबल रहती है इसी का नाम क्रिया की प्रतिक्रिया है, जिसकी सजा इसी जीवन में प्राप्त हो जाती है। विचार कीजिये जिस समय बुढ़ौती में दोनों को एक दूसरे के सहारे की खास आवश्यकता थी उसी समय ऐसी निःसहाय अवस्था! जीवन संगी ने ही आक्रमण किया और वह भी बच्चों की सेना सहित। इसी प्रकार पत्नी यदि कटुभाषिणी असभ्य आचरण वाली प्रारम्भ में अवसर देखकर बनती है तो समय आने पर उसे भी घोर उपेक्षा रूपी अपमान उस समय विशेष रूप से भोगना पड़ता है जब वह शारीरिक दृष्टि से असमर्थ होती है। ऐसे जीवन के दुःख का क्या कोई पारावार हो सकता है? यह घरौंदा बनाया ही क्यों था? इतनी शान और गाजे बाजे के साथ इसमें प्रवेश किया ही क्यों था? जब इसका यही अरुन्तुद दुःखद परिणाम था।

लोग विचार नहीं करते कि हमें हँसी खुशी से यहाँ रहना भी है, हमारी प्रसन्नता से ही यह चमन महकने वाला है यहाँ तो पूरा भोग कर्म का हिसाब है अतः किसी को ठेस लगाने वाला व्यवहार कालान्तर में स्वतः ही तो भोगना होगा। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के एक मन्त्र में इस विषयक बड़ी उत्तम शिक्षा प्राप्त होती है।

मन्त्र इस प्रकार है—

परा शुभ्रा अयासो यव्या साधारण्येव मरुतो मिमिक्षुः।

न रोदसी अप नुदन्त घोरा जुषन्त वृधं सख्याय देवाः ॥
(ऋ० १।१६७।४)

प्रकृत मन्त्र में कहा है कि "जिस प्रकार (शुभ्राः अयासः मरुतः) स्वच्छ शीघ्रगामी वायु (साधारण्या इव) साधारण गति से (रोदसी मिमिक्षुः) द्यौलोक एवं पृथिवी लोक को सींचते हैं और (घोराः) भयंकर वेग से चलने पर भी उन द्यावापृथिवी को (न परा अप नुदन्त) उनको परावृत = उलट नहीं देते हैं उसी प्रकार (देवाः) विद्वान् लोग अलंकार युक्त उत्तम, (घोराः) शत्रुओं के लिये कठोर होने पर भी (यव्या) संगतिकरण करने वाली देवी के साथ (न परा अपनुदन्त) उल्टा व्यवहार न कर अपितु (साधारण्या इव)" साधारण क्रिया से (सख्याय) मित्रता के लिये (जुषन्त) सेवन करें। तात्पर्य यह हुआ कि जैसे भयंकर शक्ति वाला वायु द्यौलोक एवं पृथिवी लोक के लिये अकल्याणकारी कभी नहीं होता, उनका विनाश नहीं करता किन्तु संयोग विभाग करने वाली साधारण गति से प्रवाहित होकर निरन्तर सुख पहुँचाता है उसी प्रकार परिवार में शक्ति सम्पन्न होने पर भी उस शक्ति का उपयाग पत्नी या अन्य आश्रित जनों को डराने धमकाने में ही नहीं करना चाहिये अपितु सुन्दर मृदुल व्यवहार परस्पर प्रीति से करना चाहिये।

मन्त्र में आये 'रोदसी' पद का सूर्य एवं पृथिवी के समान महनीय अपने माता-पिता को घर से दूर नहीं करना चाहिये अपितु उदारमना होकर (वृधं सख्याय जुषन्त) वृद्ध पुरुषों की भी मित्रता से सेवा करनी चाहिये यह भी अर्थ है। इस प्रकार मन्त्र में प्रचण्ड वायु की उपमा देते हुवे पति-पत्नी का व्यवहार उत्तम प्रेमपूर्ण हो तथा वे अपने माता-पिता की सेवा करें ये दो बातें कही गई हैं। कितना सरस दृष्टान्त है कि जैसे वायु की प्रचण्डता पृथिवी लोक एवं द्यौलोक को लील जाने के लिये नहीं है अपितु साधारण गति से चलकर उनका सुख बढ़ाने के लिये है वैसे ही पति-पत्नी की शक्ति सम्पन्नता एक दूसरे में कड़वाहट घोलने के लिये नहीं है। इस शक्ति

सम्पन्नता का प्रयोग दुराचारियों एवं दुष्टों का दमन करने के लिये है। यह एक रहस्य है जो मन्त्र के द्वारा विदित कराया गया है।

यहाँ प्रसङ्गतः यह लिखना भी अनुचित न होगा कि अन्य मन्त्रों के भाष्यों के ही समान ऐसे सुन्दर लोक व्यवहार की शिक्षा देने वाले इस मन्त्र के भी अर्थ का अनर्थ भाष्यकार सायण ने कर दिया है। सायण ने 'साधारण्या इव' पद का अर्थ करते हुवे लिखा है—"यथा लोके साधारण्या स्त्रिया संगता युवानो रेतो मुञ्चन्ति तद्वत् यव्या मिश्रणशीलया विद्युता परा मिमिक्षुः प्रकर्षेण सिञ्चन्ति उदकसंस्त्यायम्।" अति अश्लील होने से पूरे वाक्य का तद्वत् अनुवाद न करके मैं यहाँ इतना ही स्पष्ट कर रही हूँ कि यहाँ साधारणी शब्द का अर्थ वेश्या किया गया है। इसी प्रकार इस मन्त्र से अगले मन्त्र में आये "विषितस्तुका" पद का भी सायण ने अत्यन्त ही भ्रष्ट अर्थ किया है साधारणी शब्द के इस ऊटपटाङ्ग अर्थ को देखकर आज के अपरिपक्व शोधकर्त्ता शान से यह शोध प्रस्तुत किया करते हैं कि "वेद में भी वेश्या शब्द आया है, यह परिपाटी[1] सामाजिक पतन के काल की ही नहीं है।" इस सन्दर्भ में महर्षि दयानन्द का जितना गुणगान किया जाये उतना ही थोड़ा है; जिन्होंने हमें मन्त्रों का सही अर्थ करना तो सिखाया। मुझे तो ऐसे लोगों पर तरस आता है जिन्हें ऐसे हेय भाष्यों को देखकर ऐसी सम्मतियाँ बनानी पड़ती हैं।

प्रकृत विषय से दूर न जाती हुई मैं यहाँ कहना चाहूँगी कि स्वस्थ व्यवहार मनुष्य की सफलता का मूल मन्त्र है, इसके बिना घर या परिवार उजड़ जाया करते हैं। इनके बिगड़ने से राष्ट्र की दिशायें बदल जाती हैं। दृष्टि में स्नेह एवं वाणी में मधुरता छल-छलानी चाहिये। गृहस्थ परिवार के लिये यह शिक्षा विशेषरूप से उपादेय है।

---

१. ऐसे लोग वेद को सर्ग के प्रारम्भ में दिया हुआ ज्ञान तो मानते नहीं हैं। पाश्चात्यों के मतानुसार वे उसका काल मानते हैं॥ ❀

प्राचीन युग में नारी शिक्षा उद्देश्य, पद्धति एवं विशेषता

जीवन के मूल तत्व पुरुषार्थ चतुष्टय धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष पुरुष शरीर का ही परिणाम है स्त्री शरीर का नहीं; इस बात को प्रमाणित करने के लिये आज तक कोई भी शास्त्रीय आधार न मिला है न मिल सकेगा; इस स्थिति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारों स्त्री एवं पुरुष दोनों के लिये ही हुवे तदनुसार मोक्ष जो जीवन का चरम लक्ष्य है, आध्यात्मिक निधि है, आत्ममुक्ति है, उसकी उपलब्धि हेतु पुरुष एवं स्त्री दोनों के लिये ही वेदादि सच्छास्त्रों का गहन अध्ययन, अष्टांग योग का पूर्ण अभ्यास आदि प्रयास समान स्तर के अपेक्षित हैं यह स्वतः सिद्ध हो जाता है। प्राचीन युग की भारतीय ललनाओं ने ऐहिक सुखों को नगण्य समझकर मोक्षफल प्राप्ति हेतु ही उच्चकोटि की साधनायें तपस्यायें की थीं। इस विषय में बृहदारण्यक के याज्ञवल्क्य एवं मैत्रेयी तथा वाचक्नवी गार्गी एवं याज्ञवल्क्य संवाद ज्वलन्त उदाहरण हैं। मैत्रेयी को यदि यह विश्वास न होता कि स्त्री शरीर में होते हुवे भी मुझे मोक्ष प्राप्ति में यत्किञ्चित भी बाधा नहीं तो वह याज्ञवल्क्य से कैसे कहती कि—"येनाहं नामृता स्यां किमहं तेन कुर्यां यदेव भवान् वेद तदेव ब्रूहीति।" वेदमन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकायें घोषा, अपाला, सार्पराज्ञी, सावित्री सूर्या आदि जो समाधिस्थ मन से आध्यात्मिकता की गहरी भूमि को प्राप्त कर वेद के रहस्यों तक पहुँची थीं। विद्या के क्षेत्र में उनका यह गहन प्रयास पारलौकिक सुख को प्रमुख लक्ष्य बनाकर ही तो था। स्वयं वेद में भी "चतुष्कपर्दा युवतिः सुपेशा[1]" में स्त्री को चतुष्कपर्दा=धर्म, अर्थ, काम, मोक्षरूपी जीवन के चार तत्त्वों को जानने वाली कहा गया है। प्रकृत मन्त्र का देवता अरण्यानी है जिसका अर्थ है संन्यासाश्रम को प्राप्त करने वाली विदुषी स्त्री।

1. ऋ० १०।११४।३

इस प्रकार आध्यात्मिक दृष्टिकोण से पुरुष एवं स्त्री दोनों की अनिवार्य शैक्षिक उपयोगितायें समान सिद्ध होने पर यह प्रश्न महत्त्वहीन हो उठता है कि "स्त्री शिक्षा की आवश्यकता क्यों ?"

आध्यात्मिक दृष्टिकोण के अतिरिक्त स्त्री शिक्षा की उपयोगिता सम्बन्धी दूसरा पक्ष है ऐहिक सुख की उपलब्धि अर्थात् पारिवारिक सुख। यतः परिवार के मुख्य आधार स्त्री एवं पुरुष ही होते हैं अतः दोनों का वैचारिक स्तर समान होना आवश्यक ही है। नारी के लिये तो वेद में "स्वयं सा मित्रं वनुते" अर्थात विदुषी नारी अपने लिये पति के रूप में मित्र को स्वयं चुनती है कहा है। पति-पत्नी का यह मैत्री भाव जिसकी ओर वेद का यह संकेत है वह परस्पर विचारों की एकता के बिना कदापि सम्भव नहीं है। सत्य शिक्षा, स्वस्थ सद्व्यवहार, सुसंयमितता एवं आत्म संयम को जन्म देती है तथा सुसंयमिततादि गुण पारिवारिक सुख एवं सन्तोष को जन्म देते हैं। इस प्रकार सुशिक्षा एवं ऐहिक सुख दोनों का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है और वह स्त्री एवं पुरुष दोनों के ही सुशिक्षित होने पर सम्भव है, अनिवार्य सत्य सिद्ध हुआ। इतना ही नहीं जब दोनों के परस्पर गुरुतर दायित्वों का प्रश्न उठता है तो सन्तान निर्माण रूपी महत्त्वपूर्ण भूमिका के रूप में स्त्री का दायित्व निःसन्देह पुरुष से कहीं ऊपर जाता है और तब स्त्री शिक्षा का महत्त्व पुरुष शिक्षा से भी कहीं अधिक महत्त्वपूर्ण आवश्यक एवं अनिवार्य है यह सत्य उजागर होता है। माता के कर्त्तव्यों एवं महिमा का जो सुविस्तृत वर्णन वेद में उपलब्ध होता है[1] वह नारी शिक्षा के रहस्योद्घाटन के लिये नितान्त पर्याप्त है। इसी प्रकार वेद में जो अनेकों सूक्त के सूक्त उषा-देवताक मन्त्रों के आये हैं। वह "अनन्ता वै वेदाः" वेदार्थ अनन्त हैं की उक्ति अनुसार केवल उषा के वर्णन परक ही नहीं हैं अपितु

१. यजु० ११।६८–६९, ऋ० ६।११४।, ४।१८।१–५

वाचकलुप्तोपमालंकार मानकर स्त्री शिक्षापरक भी हैं।[1] इसी प्रकार वेद में दम्पती देवता एवं पत्नी देवता[2] वाले मन्त्र भी स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता स्पष्ट सिद्ध करते ही हैं। इतना ही नहीं वेद में नारी को 'स्तोमपृष्ठा'[3] कहा है जिसका अर्थ है स्तोमाः पृष्ठा ज्ञापयितुमिच्छा अर्थात् जिसे वेदमन्त्रों की जिज्ञासा हो अथवा स्तोम=जिसके पीठ भाग में मन्त्र हैं अर्थात् ऐसी स्त्री जो स्वाध्याय हेतु वेद की पुस्तकों को अपने पीठ यानि समीप रखकर चलती है।

इसके अतिरिक्त वेदों में वैवाहिक विषय के जो अतिमनोरम मन्त्र आते हैं उनको पढ़कर तो यह सन्देह ही नहीं रह जाता कि राष्ट्र की वास्तविक आधारशिला नारी ही है। ऋग्वेद के दशम मण्डल के ८५ वें सूक्त में गृहस्थ जीवन के जिस उच्चादर्श की झांकी प्रस्तुत की गई है वह पण्डिता स्त्री के सिवाय अन्य में सम्भव नहीं है। किञ्च यजुर्वेद ३७।१२ भी इस विषय में द्रष्टव्य है जिसमें पति द्वारा पत्नी से आयु, पुत्र, दृष्टि, पुष्टि एवं ओज की याचना की गई

---

१. देखें—उषा सम्बन्धी वर्णन के लिये ऋग्वेद प्रथम मण्डल ४८ एवं ४९ वाँ सम्पूर्ण सूक्त। प्रथम मण्डल का १२३ वाँ सूक्त सम्पूर्ण। इस सूक्त के ११ वें मन्त्र में "मातृमृष्टा" शब्द आया है जिसका अर्थ है माता की शिक्षा द्वारा मृष्टा=शुद्ध हुई कन्या। इसी प्रकार ऋ० १।११३, १२४ ॥ ४।५१,५२ ॥ ५।७९,८० ॥ ६।६४,६५ ॥ ७।७५,७६,७७,७८, ७९,८० तथा ८१। इतने सम्पूर्ण सूक्त उषा देवताक हैं। वेद में उषा के इतने विस्तृत वर्णन का रहस्य ही यही है कि इसमें नारी शिक्षा एवं उषा की प्राकृतिक कमनीयता दोनों का एक साथ कथन है। वेदों की यह एक बड़ी आकर्षक शैली है जिसमें एक विषय का प्रत्यक्षरूपेण वर्णन होता है और दूसरे का उपमानार्थ मानकर अप्रत्यक्ष। इस शैली को वेदों में बहुत्र देखा जा सकता है।

२. यजु० १३।२०–२१ एवं १२।६०

३. यजु० १२।३

है। यह याचना पत्नी के उच्चशिक्षा सम्पन्न होने पर ही हो सकती है अतः गृह्यसूत्रों में स्पष्ट कहा है कि "अप्रज्ञया कथं सहवासः" अर्थात् अशिक्षिता के साथ विवाह कैसे हो सकता है ?

नारी को वेदज्ञ बनाने हेतु पुराकाल में बालकों के समान बालिकाओं के भी उपनयनादि संस्कार विहित थे यह यम संहिता की साक्षी से स्पष्ट है जैसा कि कहा है—

पुराकाले तु नारीणां मौञ्जीबन्धनमिष्यते।
अध्यापनं च वेदानां सावित्री वचनं तथा॥

कादम्बरी में महाश्वेता के वर्णन में कहा है—"यज्ञोपवीतेनालंकृताम्।" गोभिल गृह्यसूत्र में भी—"प्रावृतां यज्ञोपवीतिनीमभ्युदानयञ्जपेत्" (गो० गृ० २।१।१८) इसी प्रकार पराशर संहिता के प्रसिद्ध पौराणिक भाष्यकार पण्डितप्रवर माध्वाचार्य ने अपनी टीका में लिखा है—"द्विविधा स्त्रियो ब्रह्मवादिन्यः सद्योवध्वश्च। तत्र ब्रह्मवादिनीनामुपनयनमग्निबन्धनवेदाध्ययनं स्वगृहे भिक्षा इति।" इन सब प्रमाणों से सुस्पष्ट सिद्ध है कि पुराकाल में नारियों का भी वेदारम्भ संस्कार से पूर्व उपनयन संस्कार भी होता था एवं वे साङ्गोपाङ्ग सभी विद्याओं का अध्ययन करती थीं। बृहदारण्यकोपनिषद् में आये "अथ य इच्छेत् दुहिता मे पण्डिता जायेत" (६।४।१९) यह वाक्य बताता है कि कन्यायें पूरा पाण्डित्य धारण करने के लिये उसी प्रकार प्रयत्न करती थीं जैसे पुरुष। पातञ्जल महाभाष्य में आये "आपिशलमधीते आपिशला ब्राह्मणी, काशकृत्स्नमधीते काशकृत्स्ना ब्राह्मणी[1] तथा औदमेघ्यायाश्छात्राः औदमेघ्याः[2] आदि उदाहरण इस बात में सबल प्रमाण हैं कि पुराकाल में स्त्रियां व्याकरणादि विद्याओं में पूर्ण परिश्रम ही नहीं करती थीं अपितु अध्यापन भी करती थीं। रामायण में बाली ने अपने मृत्यु के क्षणों

---

१. द्र० महाभाष्य ४।१।१४
२. द्र० महाभाष्य ४।१।७८

में तारा की प्रशंसा जिन शब्दों में की है वह उस काल की नारी के गहन पाण्डित्य का द्योतक है। "मन्त्रविद् विजयैषिणी" कहकर बाली ने यह प्रकट किया है कि तारा वेद मन्त्रों का ज्ञान रखती थी तथा बड़ी तपस्विनी थी।[1] बाली ने तारा के सम्बन्ध में कहा है—

सुषेण दुहिता चेयमर्थं सूक्ष्मविनिश्चये।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्यं तन्मुक्तसंशयम्।
न हि तारामतं किञ्चिदन्यथा परिवर्त्तते॥[2]

इसी प्रकार वाल्मीकि रामायण में कौशल्या माता के लिये भी "मन्त्रवत्कृतमंगला[3]" शब्द आया है जिससे पता चलता है कि वह वेद विदुषी थी।

इन सभी प्रमाणों से इस बात में तनिक भी सन्देह नहीं रह जाता कि पुराकालमें नारियाँ ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करती हुई वेदाध्ययन का अभ्यास बड़ी तपश्चर्या से करती थीं। समाज में उनका पूर्ण मान था जिस प्रकार ऋग्वेद के ७ वें मण्डल के ३४ वें सूक्त के प्रथम से लेकर सात[4] मन्त्रों द्वारा वेद में पुत्री शिक्षा का प्रकार एवं उपयोगिता बताई गई है, उसी प्रकार समाज में उस समय पुत्रो-

---

१. यथा तारां तपस्विनीम् वा० रा० १३।३६
२. वा० रा० किष्किन्धा १६।१२–३६
३. वा० रा० १७।२
४. अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मनाहिनोत (ऋ० ७।३४।५) अर्थात् अरी बेटियों! तुम अपने विद्यारूपी यज्ञ को हिनोत = बढ़ाओ उसमें शिथिलता मत करो। जैसे अह इव = दिन क्रम से आते और जाते रहते हैं जिस प्रकार याता इव = बटोही बराबर चलते रहते हैं, उसी प्रकार तुम भी निरन्तर गतिमान् हो जाओ अन्यथा यह समय हाथ नहीं आयेगा।

शिक्षा के लिये प्रयत्न किये जाते थे। यही कारण था कि प्राचीन भारत की सामाजिक स्थिति उस समय अत्युत्कृष्ट एवं ऐहिक तथा पारलौकिक दोनों प्रकार के सुखों से परिपूर्ण थी। यह एक अत्यन्त भ्रामक और गलत दृष्टिकोण है कि वेद में नारियों के सम्बन्ध में कुछ निन्दाजनक प्रसंग विद्यमान हैं। नारी के सम्बन्ध में एक भी मन्त्र वेद में ऐसा नहीं है, हमारी वेदमूलक संस्कृति अतिमहान् है। उसका भली भाँति अवगाहन करने पर 'वेद में नारी निन्दा है' ऐसी मिथ्या धारणा एकदम अहेतुक एवं निराधार प्रतीत होने लगती है। वैदिक न्याय और व्यवस्थायें सबके लिये समान हैं, उसमें नारी एवं पुरुष के सम्बन्धों का समीकरण सदैव एक जैसा है और रहेगा।

नारी उत्तम समाज के सृजन की प्रक्रिया का मेरुदण्ड है। योग्य सुसंस्कृत सन्तान सर्वप्रथम उसके आँचल में ही पलकर बनते हैं अतः वह सन्तान की प्रथम गुरु है। गर्भावस्था से लेकर पाँच वर्ष तक जो प्रभाव एवं संस्कार सन्तान पर माता डाल देती है वह कोई विश्वविद्यालय भी नहीं कर सकता। इसी मूल थाती को लेकर प्रत्येक सन्तति जीवन पर्यन्त विकसित होती है। इस दृष्टि से नारी की वेदमूलक शिक्षा की उपादेयता निःसंदिग्ध है। संस्कृति कला एवं आध्यात्म का विकास नारी शिक्षा पर ही सम्भव है इस विषय में किसी कवि ने ठीक ही कहा है—

यदि कुलोन्नयने सरसं मनो यदि, विलासकलासु कुतूहलम्।
यदि निजत्वमभीप्सितमेकदा कुरु सुतां श्रुतिशीलवन्तीं तदा॥
(द्र० आर्य विद्या सुधाकर)

—:०:—

माँ की देन

सन्तान के निर्माण में माता की भूमिका यद्यपि सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण होती है तथापि पुत्री का निर्माण लोक एवं परलोक दोनों के लिये सुखावह है। उत्तम शिक्षण, गृह विज्ञान, हस्त कला कौशल के साथ-साथ सुयोग्य माता अपनी प्यारी पुत्री के बढ़ते हुवे वयःक्रम के अनुसार बड़ी चतुरता से उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन करती हुई जिन दृढ़ किन्तु मृदुल व्यावहारिकताओं को अपनी सूक्ष्म बुद्धि से उपस्थित करती है मानों माता की वही सूक्ष्म दृष्टि पुत्री को उत्पथ पर जाने से रोकने के लिये उसका रक्षा कवच बन जाती है। माता के पुत्री के प्रति किये गये इस मनोवैज्ञानिक अध्ययन का प्रभाव पुत्री के वर्त्तमान कालिक दिशा-निर्देश तक ही सीमित नहीं रहता अपितु इससे पुत्री रूपी भावी सुयोग्य माता का पथ निर्मित हो जाता है। विवाह के अनन्तर पराये घर में जाने पर ऐसी सुदक्षा बेटी विकट से विकट समस्याओं के उपस्थित हो जाने पर अपनी धैर्यवती मेधाविनी माता को आदर्श प्रतिमान मानकर हँसते-२ उन समस्याओं का समाधान निकाल लेती है। वस्तुतः बेटी ने सतवन्ती सीता को तो देखा नहीं होता जिससे उस अप्रत्यक्ष का अनुकरण करे वह तो पूर्णकामा अपनी माँ की आकृति में ही सीता-दमयन्ती आदि आदर्श-चरित्र नारियों के प्रतिबिम्ब को देखती है। वही उसका प्रतिमान होता है। वह जैसे ही कुछ बड़ी होने लगती है वैसे ही माता के जीवन में आये ऊहापोहों को बड़ी शीघ्रता से समझने लगती है और उसके हृदय में माता के अपार धैर्य सहनशीलतादि गुण अमिट प्रभाव डालने लगते हैं, बस; यही माता के द्वारा पुत्री को दिया हुआ रसायन बनता है, गुण ग्रन्थि हो जाता है जिसका उपयोग वह अपने भावी जीवन में शिवा, सुमना, सुवर्चा, अरेपसा (निष्पाप) पत्नी बनकर एवं आकाश भी जिसके सामने नम जाये ऐसी साहसी माता बनकर करती है।

यौवनावस्था को प्राप्त होते ही प्रायः प्रत्येक पुत्री की यही मानसिकता होती है कि वह भी माता के बनाये इस सुखी संसार का दूसरा ढाँचा तैयार करेगी, सबको इसी प्रकार अपने त्याग भाव से सुखी सन्तुष्ट रखते हुवे परिवार में समादृत होगी, इस प्रकार पुत्री का भावी पथ माता द्वारा ही बनता है। प्रायः प्रत्येक माता-पिता कन्या को पढ़ा लिखा एवं गुण विभूषिता बनाकर "अर्थो हि कन्या परकीय एव" की उक्ति के अनुसार यज्ञ मण्डप में बैठकर अग्नि को साक्षी देते हुवे उसका दान(कन्यादान = कन्या प्रतिग्रहण)उत्तम सृष्टि-क्रम चलाने के लिये करते हैं; अपने आप में वस्तुतः ऐसा ही महनीय त्याग है, जैसे एक आचार्य 'तं रात्रीस्तिस्र उदरे बिभर्त्ति' के अनुसार ज्ञान, कर्म, उपासना रूपी विद्याओं को ब्रह्मचारी में धारण कराने के लिये मानो अपने गर्भ में लेता है, अपने सन्निकट लाता है तदनन्तर उसे त्रयीविद्या से विभूषित कर उसका समावर्त्तन संस्कार कर राष्ट्र के लिये उस ब्रह्मचारी को दे देता है। निर्माण करना है और फिर उस उत्तम वस्तु का परार्थ त्याग करना है अर्थात् निर्माण परार्थ है स्वार्थ के लिये नहीं। जितनी उत्तम वस्तु का त्याग करेंगे उतना ही फल गहन सुखदायी होगा अतः पूर्ण मनोयोग से वर्षों समय लगाकर देय वस्तु का निर्माण सुयोग्य माता एवं आचार्य करते हैं। वे दान क्या करते हैं मानों पुत्री या ब्रह्मचारी के रूप में अपना सम्पूर्ण मनोरथ ही दूसरे परिवार या राष्ट्र को सौंपते हैं। पराये घर से पुत्री की प्रशंसा आये तो इहलोक धन्य हो गया तथा कर्त्तव्य कर्म पूर्ण करने से परलोक भी बन गया, यही कन्या के निर्माण का फल है। चूंकि सृष्टि की प्रक्रिया के निर्माण की आधार शिला नारी है अतः संस्कारों के बीजारोपण का कार्य अत्यन्त सावधानी एवं प्रमुखता के साथ कन्या में माता द्वारा होना चाहिये इस दृष्टि से पुत्री का सुसंस्कारित होना पुत्र से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है यह निर्विवाद है।

माता को पुत्री के निर्माण में अपनी जिस मानसिकता का

अध्यारोप उस पर करना पड़ता है वह एक विलक्षण वस्तु है। शुभ संस्कारों से युक्त, धैर्यादि गुणों से परिपूर्ण ऐसी बेटी जिस समय अपना नया संसार बसाने के लिये आगे कदम रखती है उस समय वह अपने आप में पूर्ण सन्तुष्ट एवं आश्वस्त होती है। दुर्जेय एवं जटिल परिस्थितियों में भी "मैं अपने सद्गुणरूपी हथियार से सर्वत्र सफलता प्राप्त कर लूंगी, शान्ति से मैं सबके मन को जीत लूँगी" यह विश्वास उसे सदैव अविचल बनाये रखता है। माँ के द्वारा प्राप्त संस्कारों की इस पूँजी को जो पुत्री प्राप्त कर लेती है उसे बनावट का दोहरा जीवन जीने की आवश्यकता नहीं होती वह तो उस विजय गौरव एवं उल्लास को लिये हुवे गृहस्थाश्रम में प्रवेश करती है। जैसे कोई बालक अध्यापक द्वारा किये गये "होमवर्क" को भली प्रकार अभिभावक की सहायता से सम्पादित करने पर विजय गौरव से अपनी कक्षा में प्रवेश करता है। कक्षा के अन्य बालकों की अपेक्षा वह अपने आपको अच्छा समझता है, सन्तुष्ट, प्रसन्न पाता है। इस प्रकार के आत्म-विश्वास से पुत्री को भर देना ही माता का मुख्य कार्य है। गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते समय वधू को यही आशीर्वाद समागत देवगण देते हुवे कहते हैं—

हृदे त्वा मनसे त्वा दिवे त्वा सूर्याय त्वा।
ऊर्ध्वमिममध्वरं दिवि देवेषु होत्रा यच्छ॥

यजु० ६।२५

अर्थात् हे वधू! हम तुझे हार्दिक एवं मानसिक सुख के लिये आशीर्वाद देते हैं कि तू दिव्य गुण सम्पन्ना पुत्री एवं प्रतापी पुत्र को प्राप्त कर तथा इस गृहस्थरूपी यज्ञ को अपनी सद्भावनाओं से सुखप्रद बना।

यह एक तथ्य है कि आज पुत्री शिक्षा के प्रति माता की असावधानी के कारण ही विवाहित पुत्रियों को टीपटापमय बाह्य शृंगार पटार वाला दोहरा जीवन जीने के लिये बाध्य होना

पड़ता है। गृहसाम्राज्ञी का परिवार की प्रत्येक कड़ी को सन्तुष्ट प्रसन्न रखना अनिवार्य दायित्व है। विचार एवं आवश्यकतायें भिन्न-२ हैं--कुछ का पालन करना है, किन्हीं को कुछ देना है ऐसी जिम्मेदारियों का निर्वाह यथोचित रीति से वही वधू कर सकती है जिसने माँ की घुट्टी में उदारता, दया एवं समदृष्टि का पाठ पढ़ा हो। परिवार केवल न्याय से नहीं चलते दया से चलते हैं। न्याय तो परिवार में प्रत्येक भाई या बहिन को समान वितरण की शिक्षा देता है किन्तु दया कहती है कि "परिवार के कमजोर घटक को अधिक सहयोग दो।" समदृष्टि का निर्वाह बड़ी सावधानी से करते हुवे निर्बल घटक के प्रति यह सहयोग बड़ी उच्चभूमि में किसी को भी खड़ा कर देता है। माता से प्राप्त शिक्षा के कारण इन्हीं सद्गुणों का अविचल विश्वास किसी भी पुत्री में होता है। छोटी-२ सी बातें जनमते से ही माता उपदेश एवं निर्देश के द्वारा बच्चों को देने लगती है जो उसके जीवन स्रोत को सिञ्चित करने लगता है। "इस प्रकार भोजन चबा-चबा कर थाली पोछकर खाओ, बिखेरो नहीं, ऐसे चलो, बात करते समय नाक भौं व्यर्थ न सिकोड़ो, सोते सयय पैर धोकर सोओ, भोजन करके तुरत मत सोओ, ईश्वर का ध्यान करके सोओ, प्रातः नमस्ते करो" ये छोटी-२ बातें कहते-कहते जब स्वभाव में पड़ जाती हैं तो इनके बिना किये, दिनचर्या अधूर्ण लगने लगती है, यह सब जीवन का अग बन जाता है।

इस प्रकार माता वह धुरी है जिसके इर्द गिर्द पुत्री का जीवन पल्लवित एवं विकसित होता है। माता की सुशिक्षा की उपमा अनुपमेय है क्योंकि माता मानव की "नास्ति मातृसमो गुरुः" के

अनुसार श्रेष्ठ एवं प्रथम गुरु हैं। कष्टों को सहन करने की अपार क्षमता माता सीता ने अपनी माता "योगिनी"[1] की गोद में ही प्राप्त की थी और तभी गौरव के साथ अनुसूया माता के वन में कष्ट सहन करने का उपदेश देने पर कह दिया था कि "पाणिप्रदानकाले जनन्या मे ऽनुशिष्टम्" अर्थात् गृहस्थ जीवन में साहस के साथ कष्ट सहन करने का यह उपदेश मेरी माता ने विवाह से पूर्व ही मुझे दिया था अच्छा हुआ आज आपने पुनः यह उपदेश सुनाकर मुझे उपकृत किया है इस प्रकार शुभ संस्कारों के रूप में पुत्री के लिये 'माँ की देन' अमोघ स्थिर निधि है अक्षय वट है प्रत्येक क्षेत्र में ससम्मान जीने के लिये यह उत्तम साधन है जीवन का मर्म यहीं आकर विकसित होता है तथा कर्म पूर्ण होते हैं जिसके भाग्य में यह शिक्षा गर्भ से ही प्राप्त होती है वह मानों इसी जीवन में बन और सुधर जाता है।

---

१ सीता की माँ का नाम योगिनी था इसमें शिव पुराण का प्रमाण है—

धन्या प्रिया द्वितीया तु योगिनी जनकस्य च।

तस्याः कन्या महालक्ष्मीर्नाम्ना सीता भविष्यति ॥ (पा. ख. २।२९)

— ० —

बेटी की माँ

कन्याविवाहोत्सव पर कन्या की माँ के हृदय का चित्र तूलिका द्वारा खींच पाना सम्भवतः किसी भी साहित्य के लिए सदैव असम्भव ही रहेगा। कन्या के भावी पतिगृह को देने के लिए सभी साजो सामान तैयार हैं जिसे देख देखकर सभी निहाल हो रहे हैं किन्तु बेटी की माँ की आँखें वात्सल्य के समुदित उस पुञ्ज पर ही लगी हुई हैं जिसे उसने जन्म ही नहीं दिया बल्कि उसके लिए उन्मुक्त ममत्व लुटाया है।

युग बदल रहा है। आज मनुष्य की आस्थायें एवं विश्वास हिल गये हैं। जड़ पूजा का नया स्वरूप हमारे सामने है। चैतन्य मूर्त्ति प्यारी बेटी जिसकी कल बिदाई होने वाली है उस पर लोगों का (विशेषतः श्वसुर गृह वालों का) ध्यान न के बराबर है किन्तु बेटी के साथ जाने वाले ऐशो आराम के सामान पर ही दृष्टि गड़ी है, मानो चेतन से जड़ मूल्यवान् हो चुका है। मनुष्य की ऐहिक सुख कामनायें कितनी कदर्य हैं उन्हें तृप्त करने के लिए किसी का गला काट देने में हमें कोई संकोच नहीं रह गया है। इस यान्त्रिक युग ने सम्भवतः हमारे अन्दर यही जड़शून्यता पैदा कर दी है कि हम किसी की भावनाओं के मर्म से अपरिचित ही रह गये हैं, पर विलासिता के वे साधन जो बटन दबाते ही हमें प्राप्त हो जाते हैं उनके रहने पर क्या पारस्परिक मानवीय सम्बन्ध समाप्त हो जायेंगे ?

विवाह सम्बन्धों के निर्धारण में सर्वतोप्रमुख कार्य "वर-वधू के गुण-कर्म-स्वभाव को मिलाना है" महर्षि दयानन्द द्वारा निर्दिष्ट इस एक मूल मन्त्र पर ही ध्यान देने से वे सारी मुश्किलें समाप्त हो जाती हैं जो आज समाज के लिए सिर दर्द हैं। वैदिक आज्ञा यही है कि कन्या एवं वर के समान रूप और शील को मिलाया जाये न कि धन सम्पत्ति—जायदाद। इस विषय में प्रथम मण्डल का

छप्पनवाँ सूक्त विशेष द्रष्टव्य है। इस सूक्त के तृतीय मन्त्र[1] में स्पष्ट कहा है कि—"अति उत्तम विवाह वही हैं जिसमें तुल्यरूप स्वभाव वाली कन्या और वर का सम्बन्ध होवे किन्तु कन्या से वर का बल और आयु दूनी हो।"

व्याधि जितनी ही व्यापक होगी, परिणाम उतने ही गहन होंगे, न कि साधारण, तथैव कुविचार एवं कुरीतियाँ भी बहुव्यापक होकर गहनतम सामाजिक समस्याओं को ही पैदा करेंगे न कि सामान्यता। स्वार्थ के घेरे में आकर मानव आज अपने लिये ही विकराल समस्यायें पैदा कर रहा है। दहेज जो सस्कृत के दायद शब्द का ही अपभ्रंश रूप है वह बताता है कि कन्या के लिए स्नेहवश स्वेच्छापूर्वक जो पैतृक सम्पत्ति का भाग विवाह के समय में दिया जाता है वास्तव में उसी का नाम दहेज है किन्तु जबरन माँग या लेन देन करना एक प्रकार का लुटेरापन है। इस कुरीति के कारण जिस अमानुषिकता का व्यवहार आज समाज में हो रहा है वह किसी से छिपा नहीं है।

माता-पिता के समक्ष एक ओर ममता का सागर है तो दूसरी ओर वज्रसम प्रतिवेदना। इस युग की यह समस्या किसी सती प्रथा आदि से कम भयावह नहीं। यह हत्या से भी बढ़कर पाप है जिसमें जीते जी माता-पिता को ममता की तुला में अपना मांस तक नुचवाकर वर पक्ष की माँग को पूरा करना पड़ता है। इस कुप्रथा को वैवाहिक आडम्बरों ने भी अत्यधिक बल दिया है जिसका बहिष्कार करना प्रत्येक गृहस्थ का धर्म है।

माँ बेटी के लिए क्या नहीं है, सर्वस्व है, आधार है, आँख की कनीनिका है। जन्म से लेकर बड़ा करने तक ममत्व का टुकड़ा होने पर भी माँ नाना प्रकार के कठोर व्रत कन्या से यह कहकर पालन

---

१. स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि॥

करवाती है कि पराये घर जाकर वह सहनशील और तितिक्षु बनी रहे, उलाहना और व्यंग इसे न सुनने पड़ें पर वही माँ देवरूपा कन्या बनाकर भी विवाह में बिदाई के पश्चात् इस दुश्चिन्ता से व्याप्त एवं प्रकम्पित हो जाती है कि कहीं इसे वित्तलोभी भूखे भेड़िये न निगल जायें।

आज की नारी का यह सबसे बड़ा दुर्भाग्य हैं कि वह स्वतन्त्र कहला कर भी मानसिक रूप से बन्दिनी ही नहीं आत्महत्या करने के लिए विवश है। अभी हाल ही में संसद् सदस्या श्रीमती प्रमिला दण्डवते ने कहा था कि—"बम्बई देश में हर दो घण्टे में एक महिला के साथ बलात्कार होता है।" क्या यह आत्महत्या के लिये विवशता की स्थिति नहीं? सुख वैभव से भरे हुवे घरानों में भी स्त्रियों के साथ मानसिक स्तर पर जो खिलवाड़ किये जाते हैं वे अपनी अनकही दर्दभरी कहानी पृथक् रखते हैं। यह एक विडम्बना है कि आश्चर्यजनक औद्योगिक एवं वैज्ञानिक विकास होने के पश्चात् भी हमारे मन पारस्परिक सुख दुःख की अनुभूति में इतने शिथिलप्राय हो गये हैं। मनुष्य का पाशविक बल नैतिक गुणों का शत्रु है। इस पाशविक बल की कहानी प्रत्येक देश में अजब-२ रही है एवं है। जापान जैसा देश जो अपनी समृद्धि एवं विकास से दुनियाँ को चमत्कृत कर चुका हो उस देश की ही "मूरासाकि शिकीबु" नामक गद्य लेखिका ने अपने उपन्यास में जो स्त्रियों के सुख दुःख भरे जीवन के गहन एवं मार्मिक विचार प्रकट किये हैं वे उसके अपने देशविषयक अनुभूति के ही परिणाम कहे जायेंगे। पता चलता है कि यान्त्रिक विकास सुख दे सकता है किन्तु आनन्द की उस तन्त्री को नहीं हिला सकता जिसे प्राप्त कर मनुष्य के हृदय में प्रेम करुणा एवं दया राज्य किया करते हैं। स्वार्थान्ध तथाकथित जड़पूजक आज का तरुण भटक रहा है, आनन्द जो परमेश्वर के सान्निध्य से ही प्राप्त हो सकता है वह तो उस अभागे को उपलब्ध ही नहीं। बेटी की माँ करुण व्यथा से रो रही है पर वह झूठे धन वैभव की लूट खसोट में ही लगा है। ❀

ममतामयी रात्रि माँ

साहित्यकारों ने रात्रि को 'काली नागिन' संज्ञा देकर, उसका अपमान भले किया हो, पर वेदों में इसको अत्यन्त सुखद बताते हुये इसका अतीव मनोहारी वर्णन किया है। यास्क मुनि ने निरुक्त २।१८ में रात्रि शब्द के तीन प्रकार के निर्वचन प्रस्तुत किये हैं—

१—प्ररमयति भूतानि नक्तंचारीणि=जो पिशाच चोरादि निशाचर व्यक्तियों को रमण कराती है।

२—उपरमयतीतराणि ध्रुवीकरोति=जो पिशाचादि से भिन्न दिवाचारी लोगों को उनके कामों से विरत कराकर उन्हें निद्रा में सुला देती हैं। आनन्द स्वरूप में जो स्थित करती है।

३—रातेर्वा स्याद्दानकर्मणः, प्रदीयन्ते अस्याम् अवश्यायाः= अथवा दान अर्थ वाली 'रा' धातु से इसका निर्वचन करें क्योंकि रात्रि में ही ओस प्रदान की जाती है।

रात्रि को सर्वथा सुखद सिद्ध करने के लिये हमें यास्क मुनि के द्वितीय निर्वचन पर ध्यान देना होगा। दिन भर विभिन्न प्रकार के कौतूहलों, झंझटों, दुखों में फँसे व्यक्ति को रात्रि माँ जब अपनी गोद में सुला देती है तो वह व्यक्ति दुनियाँ के अन्य कार्यों से उपरत होकर शान्त निद्रा को प्राप्त कर अत्यन्त सुख को उपलब्ध करता है अतएव ऋषि दयानन्द ने यजुर्वेद २८।१५ के "अयावि अन्या अघा द्वेषांसि" का अर्थ करते हुए लिखा है कि—"अन्धकार रूप रात्रि द्वेषयुक्त जन्तुओं को पृथक् करती है। रात्रि प्राणियों को सुलाकर द्वेषादि को निवृत्त करती और दिन द्वेषादि को प्राप्त और सब व्यवहारों को प्रकट करता है। वैसे (अतः) प्रातः काल में योगाभ्यास से रागादि दोषों को निवृत्त और शान्ति आदि गुणों को प्राप्त होकर सुखों को प्राप्त होओ।"

वस्तुतः रात्रि दिवाचारी एवं योगाभ्यासी लोगों के लिये संयम की पराकाष्ठा है, अत एव यजुर्वेद १५।५ में 'संयच्छन्दः' कहा है

जिसका शतपथकार ने ८।५।२।५ में व्याख्यान करते हुए कहा— **"रात्रिर्वै संयच्छन्दः"** अर्थात् संयम की इच्छा ही रात्रि है। रात्रि के लिये ब्राह्मण ग्रन्थ का उपर्युक्त वाक्य सचमुच ही बड़ा महत्त्वपूर्ण है। भोगवादियों के लिये तो रात्रि को संयम के रूप में देखने की कल्पना भी कठिन है। शतपथ १३।१।४।१–३ में अश्वमेध का वर्णन करते हुए कहा है कि—प्रातःकाल की आहुतियाँ मानों अश्वमेध के अश्व (कर्त्तव्य कर्म) की खोज है एवं सायंकाल दी हुई आहुतियाँ मानों क्षेम की प्राप्ति है क्योंकि **"क्षेमो वै रात्रिः"** रात्रि कल्याण-कारिका है। इस प्रकार यजमान लोग क्षेम प्राप्त करते हैं। शतपथ के इस प्रकरण में जहाँ दोनों समय अग्निहोत्र करने का भावपूर्ण वर्णन है वहाँ रात्रि को भी कल्याणकारिणी कहा है यह ध्यान देने योग्य है।

रोगी भी अपनी समस्त पीड़ा को रात्रि माँ की गोद में सोकर भूल जाता है। चिकित्सक भी उस रोगी को सुलाने का ही यत्न करते हैं ताकि वह सोकर शान्ति को प्राप्त कर सके, वस्तुतः यह रात्रि माँ कल्याणकारिणी है तभी तो शतपथ ३।४।४।१५ में **"अग्निर्वा अहः सोमो रात्रिः"** कहा है, अर्थात् दिन अग्नि है एवं रात्रि सोम=शान्ति प्रदात्री है। सोम शब्द शान्तिदायक परमात्मा, आह्लादक चन्द्रमा, स्नातक ब्रह्मचारी, एवं सोमलता के अर्थ में प्रायः वेदों में आता है। यहाँ शतपथ ब्राह्मणकार ने रात्रि को भी 'सोम' बताया है रात्रि तमाम हमारे ऊँच-नीच के भेद भावों को समाप्त कर हमें शान्तियुक्त निद्रा में डाल देती है अतः वह सोम है। सामवेद में इसी शान्तिदायिनी रात्रि के शुभागमन का वर्णन बड़ी रोचकता से आया है। मन्त्र है—

आ प्रागाद् भद्रा युवतिरह्नः केतून् त्समीर्त्संति।
अभूद् भद्रा निवेशनी विश्वस्य जगतो रात्री ॥ (साम०पू०६०८)

भावार्थः—भद्रा = कल्याणकारिणी युवती रात्रि हमारे जीवन में आ प्रागात्—आये इसका स्वागत है। वह दिन के ज्ञान को दूर

कराती है अर्थात् प्रत्येक प्रकार के विवादों से मुक्त कर सारे जगत् को शान्तियुक्त निद्रा में निवेश कराती है। यहाँ जीवन में रात्रि के आगमन का स्वागत किया जा रहा है। संयमरूपी रात्रि का यहाँ स्वागत है। निघण्टु में पढ़े हुये रात्रि के पर्यायवाची अन्य २२ नाम भी उपर्युक्त भिन्न-२ अर्थों को ही प्रकट करने वाले हैं।

ऋग्वेद १०।१२७ का पूरा सूक्त ही रात्रि देवता वाला है जिसमें रात्रि के गुणों का वर्णन करते हुये उसे **"विश्वा अधि श्रियोऽधित"** (ऋ० १०।१२७।१) अर्थात् समस्त शोभाओं को धारण करने वाली, **"अमर्त्या देवी"** (ऋ० १०।१२७।२) मरण रहिता, दिव्य गुणयुक्ता, सब थके हुए प्राणियों को सुख में प्रवेश कराने वाली (ऋ० १०।१२७।५) कहा है। यहाँ सर्वत्र वाचक लुप्तोपमालंकार के द्वारा रात्रि के गुणों के वर्णन से नारी के गुणों का वर्णन भी समझना चाहिये। जिस प्रकार रात्रि सुखदायक, शान्तिदायक, कष्ट निवारण करने वाली है उसी प्रकार नारी भी कुटुम्ब में पति पुत्रादि के लिए शान्तिदायिका कष्ट निवारण करने वाली है। रात्रि समस्त जगत् को निद्रा में प्रवेश कराने वाली है तो नारी **"उरुधारा"**= (यजु० ८।४२) ज्ञान एवं सुशिक्षा को धारण करने वाली होने से समस्त लोकों को ज्ञान में निवेश, प्रवेश कराने वाली है। विदुषी नारी सचमुच में अमर्त्या देवी बनकर सबको ज्ञान में प्रविष्ट कर सुख देने वाली है तभी तो यजु० १७।६ में कहा है—

मण्डूकि ताभिरा गहि सेमं नो यज्ञं पावकवर्णं ँ शिवं कृधि।

अर्थात् हे अग्नि के समान तेजस्विनि! मण्डूकि=सुभूषिते विदुषि स्त्रि! हमको तू प्राप्त हो इमम्=इस पावकवर्णम्=पवित्र यज्ञम गृहस्थरूपी यज्ञ को शिवम्=कल्याणकारी उप आकृधि= भली प्रकार कर।

कितनी सुन्दर यह विदुषी स्त्री से प्रार्थना या अपेक्षा है। इसी प्रकार रात्रि के सभी विशेषणों को नारी परक घटाया जा सकता है।

रात्रि के इस सुख का पान वस्तुतः वही लोग कर सकते हैं जिनका दिन ज्ञानयुक्त अच्छी बातों को उपलब्ध करने में व्यतीत हुआ हो। जिस रोगी ने प्रकृति की अत्यन्त अवहेलना करके अपने रोग को भयंकर बना लिया हो उसके लिए रात्रि सुखद नहीं; कालरात्रि होती है। इसी प्रकार जिसने अपनी दुश्चिन्तायें पाप एव दुर्व्यसनों को अतिमात्रा में बढ़ा लिया हो उसके लिये रात्रि सुखकारी कहाँ ? वह तो नींद की गोलियाँ खा-खाकर सारी रात करवटें बदलते हुये समाप्त कर देता है। ठीक उसी प्रकार जो नारी का अपमान करते हैं उनके लिये नारी कल्याणकारी कहाँ ? रात्रि का सुख एवं शान्ति उपलब्ध करने के लिये दिन में श्रेष्ठ विचार एवं सुकर्मों में रत रहने की आवश्यकता है। इसी प्रकार समाजोत्थान का नारा लगाने वाले लोगों को नारी के दिव्य स्वरूप को समझ लेने की आवश्यकता है।

वेदों में रात्रि को उषा की बहन बताते हुये उसका बड़ा आलंकारिक वर्णन कतिपय स्थानों में आया है। रात्रि लोगों को सुलाकर सबमें नवीन शक्ति का संचार करती है तत्पश्चात् ऐसे शक्तिपुञ्ज व्यक्ति को उषा अपने आपमें लेकर कर्म एवं ज्ञान में तल्लीन कर देती है। कितनी श्रेष्ठ उत्तम दिनचर्या है जो भाग्यहीनों के लिये नहीं है। किसी कवि ने ठीक कहा है—

रात्रि माँ ममतामयी मुझको सुला दे गोद में।
फिर उषा को दे कि वह झूला झुलाये मोद में॥

—:०:—

उषा देवी

जो व्यक्ति संसार में प्रातःकाल सोकर उठ नहीं सकता, वह जीवन में कोई सफलता प्राप्त नहीं कर सकता। लोक में महिलाओं के सम्बन्ध में विशेषरूप से बड़ी-बूढ़ियों की कहावत प्रचलित है, कि जो गृहलक्ष्मी गृह में सबके उठ जाने से पूर्व ही उठकर स्नानादि नित्य क्रिया करके नहीं तैयार होती, देर तक बिस्तर में पड़ कर सोती रहती है, उसके मुख में लक्ष्मी (ऐश्वर्य) पेशाब करके चली जाती है। तात्पर्य यह है कि विलम्ब से उठने वाली ऐसी आलसी स्त्री न अपने घर की सम्भाल किसी प्रकार ठीक कर सकती न ही शारीरिक स्वस्थता को प्राप्त कर सकती है, क्योंकि जिस समय प्रातःकाल स्वच्छ वायु ईश्वर की ओर से प्रवाहित हो रही थी, उस समय को तो उसने सोकर अतिवाहित कर दिया। पुरुष की अपेक्षा स्त्री का आलसी हो जाना सचमुच अत्यन्त ही दुर्भाग्य एवं घर के विनाश का सूचक है, क्योंकि "योषा पुरन्धिः" के अनुसार समाज की वास्तविक निर्मात्री तो यही है। लीजिये, इस विषय में सुनिये वेद की भी आलंकारिक व्याख्या :—

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति।
येन तोकं च तनयं च धामहे॥ य० ३४।३३॥

भावार्थः—हे वाजिनीवति! बहुत ऐश्वर्यों वाली (उषः) प्रातः की वेला जैसे तू (चित्रम्) आश्चर्य रूप को धारण करती है (तत्) वैसे (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (आभर) पुष्टि प्रदान कर (येन) जिससे हम (तोकम् च) पुत्र सन्तानादि (तनयम् च) और पौत्रादि भी (धामहे) धारण करें, प्राप्त कर सकें।

इस मन्त्र में वाचकलुप्तोपमालंकार होने से यह अर्थ निकला कि जिस प्रकार उषा = प्रातःकालीन वेला, ऐश्वर्य से युक्त है, कान्ति वाली है, एवं विचित्र रूप को धारण करने वाली मंगलमयी है, इसी

प्रकार स्त्री जाति को भी उषा के समस्त गुणों को धारण कर उसके समान ही बनना चाहिये जिससे सदैव वह अपने घर में पति, पुत्र, पौत्रादिकों के साथ आनन्दपूर्वक रह सके। वास्तव में जिस नारी के अन्दर कर्त्तव्यनिष्ठा, सेवापरायणता आदि शुभ गुण नहीं हैं वह एक फूहड़ स्त्री है उसके घर में सुख-समृद्धि कहाँ ? उसके बच्चे एवं पति आदि सभी अव्यवस्थित तथा असन्तुष्ट रहेंगे। इसलिये वेद ने शिक्षा दी कि प्रातःकाल उठकर वायु का सेवन करती हुई नारी जाति उषा के गुणों को धारण करे। सामवेद के एक मन्त्र में उषा के गुणों को इस प्रकार वर्णित किया है—

या सुनीथं शौचद्रथे व्यौच्छो दुहितर्दिवः।
सा व्युच्छ सहीयसि सत्यश्रवसि वाय्ये सुजाते अश्वसूनृते ॥

सा० पू० सं० १७।१ ॥

भावार्थः—(सुनीथे) हे सुन्दर प्राप्ति वाली (शौचद्रथे) सुन्दर स्वरूप वाली (सहीयसि) अत्यन्त बल वाली (सत्यश्रवसि) सच्चे यश वाली (वाय्ये) विस्तारवाली (सुजाते) शोभन उत्पत्ति वाली (अश्व-सूनृते) व्यापक एवं प्रिय शब्द करने वाली (दिवः दुहितः) द्युलोक सूर्य की पुत्रि ! उषा देवि ! प्रभात वेला तू (व्यौच्छः) जैसे पहले अन्धकार का नाश करती थी उसी प्रकार अब भी अन्धकार को भगा।

तात्पर्य यह हुआ कि परमात्मा ने जिस प्रकार सहज रूप से स्त्री जाति के अन्दर इतनी शक्ति सामर्थ्य एवं कर्मनिष्ठा रखी है, उससे वह उषा के समस्त गुणों को धारण कर सच्ची यशस्विनी (सत्य-श्रवसि) एवं मृदुभाषिणी बनकर अपने घर पर ही नहीं पूरे समाज पर विजय प्राप्त करे। दिन रात घर पर कलह करने वाली स्त्री भला क्या अपने पति या सन्तान को सन्तुष्ट कर सकेगी, वह तो अपने में भी स्वयम् सन्तुष्ट नहीं रह सकती। इस सामवेद के एक मन्त्र में ही नहीं उषा के गुण तो इस पूरे खण्ड में प्रकारान्तर से

वर्णित किये हैं जो ध्यातव्य हैं। कुछ लोग आज भी समझते हैं कि कन्या का जन्म कुल में दुःख सूचक है जैसा कि व्याकरण के ग्रन्थों में भी 'शोककरी कन्या' (का० ३।२।२०) इत्यादि कहा, पर मन्त्र में तो उषा के दृष्टान्त से स्त्री जाति को 'सुजाता' कहा है।

नारी जाति को 'उषा देवी' से कर्मशील बनने का उपदेश किस प्रकार ग्रहण करना है इसकी और भी वैदिक छटा देखिये—

समानो अध्वा स्वस्रोरनन्तस्तमन्यान्या चरतो देवशिष्टे।
न मेथेते न तस्थतुः सुमेके नक्तोषासा समनसा विरूपे ॥

सा० पू० सं० १७५१ ॥

भावार्थः—(स्वस्रोः) रात्रि और उषा इन दोनों बहिनों का (समानः अनन्तः) एक जैसा अनन्त (अथवा) मार्ग है (तम्) उस मार्ग पर (देवशिष्टे) परमेश्वर के अनुशासन में रहने वाली ये दोनों बहिनें (अन्या अन्या) पृथक्-२ चलती हैं अर्थात् रात्रि अपने कार्य में अपने मार्ग पर पृथक् आरूढ है एवं उषा अपने कार्य में रत है। मोह के वशीभूत होकर कभी भी ये अपने कर्त्तव्य को जिसमें ईश्वर ने उन्हें नियुक्त किया है, उसको छोड़कर इकट्ठे नहीं रहतीं। कर्त्तव्य पालन की दृढ़ता ही इनका परम धर्म है क्योंकि ये (देवशिष्टे) उस देव के अनुशासन को कैसे भंग करें ? जिसमें उसने इन्हें लगाया है। इसलिये इसी मन्त्र में आगे कहा -(न तस्थतुः) ये कभी नहीं ठहरतीं, एक साथ कभी नहीं रुकतीं तो, क्या इनमें परस्पर झगड़ा हो गया है ? वेद कहता है (न मेथेते) ये तो कभी नहीं लड़तीं, ये तो पृथक्-२ कार्य में रत होने से कभी एक साथ रुक नहीं पातीं।

ये (सुमेके) संसार को अपने सुन्दर कार्यों से सिक्त करने वाली हैं। (नक्तोषासा) ये रात्रि एवं उषा (समनसा) समान मन वाली किन्तु इन दोनों का वर्ण (विरूपे) विरुद्ध हैं अर्थात् नक्ता बहिन कृष्णवर्णा है एवं उषा बहिन गौरवर्णा है।

पाठक देखें इस मन्त्र में कितना सुन्दर; सरस तथा मधुर नक्ता एवं उषा दो बहिनों का वर्णन आया है ऐसे ही आलंकारिक प्रसंगों की वास्तविकता को न समझकर यदि कोई नक्ता उषा नाम के किसी ऐतिहासिक वर्णन को समझकर वेद को कथा कहानियों की की पुस्तक समझ ले तो उसके बुद्धि की बलिहारी है।

उषा के दृष्टान्त से इस मन्त्र में भी स्त्री जाति के लिए कर्मशील बनने का महान् उपदेश है, जिस प्रकार ये दोनों बहिनें कर्म में पृथक्-२ रत हैं कभी नहीं लड़तीं एवं संसार को अपने माधुर्य से सिक्त करती हैं उसी प्रकार सम्पूर्ण स्त्री जाति को भी कर्मशील बनना चाहिए एवं धैर्य, सहिष्णुता, माधुर्य तथा कोमलता की सृष्टि करनी चाहिये। सचमुच में ही नारी परमेश्वर की अत्यन्त सुकोमल एवं पवित्र सृष्टि है। यदि वह अपने में इन अनुपम गुणों को धारण कर ले तो समस्त विश्व को अपने चरणों में झुका सकती है, फिर भला गृहलक्ष्मी सम्राज्ञी अपने घर को सुखी एवं समृद्ध कैसे नहीं कर सकती ? वह तो अवश्य ही 'तोकं च तनयं च धामहे' के अनुसार सुखी सन्तान एवं पौत्रादिकों को प्राप्त करेगी क्योंकि वह तो अलौकिक नारी होगी। उसका तो कहना ही क्या ?

इसी प्रसंग में हमें महाभारत के उस प्रसंग को भी दृष्टिगत करना चाहिये जिसमें जंगल में रहने वाली द्रौपदी से सत्यभामा ने पूछा था कि "क्या कारण है कि पाण्डव लोग तुम्हारे वश में रहते हैं तुम्हारा मान एवं प्रतिष्ठा करते हैं इस रहस्य को हमें बताओ।" यह पूछने पर द्रौपदी ने जिन शब्दों में इस रहस्य का उत्तर दिया है वे श्लोक भी नारी के गुणों पर महान् प्रकाश डालते हैं जिससे पता चलता हैं कि द्रौपदी, कुन्ती, सीता, सुमित्रा, दमयन्ती आदि प्राचीन आर्य ललनायें वेद में वर्णित इस उषा के गुणों को अपने में पूर्णतया धारण करती थीं। द्रौपदी कहती है।—

नाभुक्तवति नास्नाते नासंविष्टे च भर्त्तरि।

न संविशामि नाश्नामि सदा कर्मकरेष्वपि ॥

महा० वन० प० २३३.२४ ॥

अर्थात्—मैं नौकरों तक को बिना भोजन कराये भोजन नहीं करती, बिना स्नान कराये मैं स्नान नहीं करती, बिना बिठाये मैं नहीं बैठती सदा कर्म में रत रहती हूं।

प्रमृष्टभाण्डा मृष्टान्ना काले भोजनदायिनी।
संयता गुप्तधान्या च सुसंमृष्टनिवेशना ॥

२३३।२६ ॥

अर्थात्—मैं घर के बरतनों को साफ मांज-धोकर रखती हूं। मधुर रसोई तैयार करती हूं। समय पर भोजन देती हूं। सदा सावधान रहती हूं, घर में गुप्त रूप से अनाज सञ्चित रखती हूं। घर को झाड़ बुहार कर साफ रखती हूं।

अतिरस्कृतसम्भाषा दुःस्त्रियो नानुसेवती।
अनुकूलवती नित्यं भवाम्यनलसा सदा ॥

२३३।२७ ॥

अर्थात्—मैं बातचीत में किसी का तिरस्कार नहीं करती। दुष्ट स्त्रियों के पास नहीं फटकती और सदा ही पाण्डवों के अनुकूल रह कर आलस्य से हमेशा ही दूर रहती हूं।

इन श्लोकों से स्पष्ट है कि द्रौपदी के पाण्डवों का अतिप्रिय बनने का कारण उसकी सतत कर्मशीलता एवं सुघड़ाई ही है।



त्रिः स्वरूपा माँ

लोक में विशेष रूप से तीन मातायें प्रचलित हैं—(१) जन्मदात्री माता (२) पृथ्वी माता (३) गौ माता। यह एक तथ्य है कि निघण्टु कोष में पढ़े हुए पृथ्वी वाचक नाम गौ वाचक नामों में भी पढ़े हैं। तद्यथा--गौ, मही, अदिति, इडा आदि। ये सभी नाम नारीवाचक भी विभिन्न मन्त्रों में आये हैं। यजुर्वेद ८।४३ में तो गौ को अघ्न्या कहा है, जिसका अर्थ है—'न हन्तुं योग्या' = इसका हनन नहीं करना चाहिए। इसी मन्त्र में अन्य कई गौ वाचक नाम पढ़े हैं। मन्त्र इस प्रकार है--

इडे रन्ते हव्ये काम्ये चन्द्रे ज्योते ऽदिते सरस्वति महि विश्रुति।
एता ते अघ्न्ये नामानि देवेभ्यो मा सुकृतं ब्रूतात् ॥

यहाँ इडा, रन्ता, हव्या, काम्या, चन्द्रा, ज्योता, अदिति, सरस्वती, मही, विश्रुति (एता ते अघ्न्ये नामानि) ये अघ्न्या = गौ वाचक नाम हैं। शतपथ ४।५।८।१० में इनका आख्यान है। ऋषि दयानन्द ने इन सभी अघ्न्या = गौ वाचक नामों को नारीपरक अर्थों में लगाया है। तद्यथा--

हे (अघ्न्ये) ताड़ना न देने योग्य (अदिते) आत्मा [स्वरूप] से विनाश को प्राप्त न होने वाली (ज्योते) श्रेष्ठ शील से प्रकाशमान (इडे) प्रशंसनीय गुणयुक्त (हव्ये) स्वीकार करने योग्य (काम्ये) मनोहर स्वरूप वाली (रन्ते) रमण करने योग्य (चन्द्रे) अत्यन्त आनन्द देने वाली (विश्रुति) अनेक अच्छी बातें और वेद जानने वाली (महि) अत्यन्त प्रशंसा करने योग्य (सरस्वति) प्रशंसित विज्ञान वाली पत्नि! उक्त गुण प्रकाश करने वाले (ते) तेरे (एता) ये (नामानि) नाम हैं, तू (देवेभ्यः) उत्तम गुणों के लिए (मा) मुझको (सुकृतम्) उत्तम उपदेश (ब्रूतात्) किया कर।

स्पष्ट है गौ अपने अमृत तुल्य पयः प्रदान के कारण अघ्न्या है तो नारी भी सृष्टि का सुकोमल तत्त्व एवं राष्ट्र निर्माण में परम उपयोगी होने के कारण अघ्न्या, इडा = स्तोतुमर्हा है। तभी तो शतपथ ब्राह्मणकार ने कहा है--"न वै स्त्रियं घ्नन्ति" (श० ब्रा० ११।४।३।२) अर्थात् स्त्री अवध्य = न मारने योग्य है।

ऐतरेय ब्राह्मण में "या गौः सा सिनीवाली" (ऐ० ब्रा० ३।४८) कहा है अर्थात् गौ सिनीवाली = अन्नपूर्णा होती है। शतपथ ब्राह्मण में "योषा वै सिनीवाली" (श० ब्रा० ६।५।१।१०) कहा है अर्थात् स्त्री सिनीवाली अन्नपूर्णा है। इस प्रकार गौ एवं स्त्री दोनों सिनीवाली=अन्नपूर्णा कहलाईं। यही बात पृथ्वी माता पर भी घटती है।

शतपथ ब्राह्मण में "सरस्वती हि गौः" (श० ब्रा० १४।२।१।७) कहा है अर्थात् गौ सरस्वती है। श० ब्रा० २।५।१।११ में ही "योषा वै सरस्वती" भी कहा है। अर्थात् स्त्री ही सरस्वती है। य० ८।४३ के मन्त्र में भी सरस्वती शब्द नारी एवं गौ दोनों के लिये आया है। सरस्वती का नारीपरक अर्थ ऊपर उद्धृत भावार्थ में देख लें। गौ वाचक मानने पर सरः का अर्थ दुग्ध होगा, सो सरस्वती का अर्थ हुआ 'दुग्ध वाली'। यह शब्द भी पृथिवी के अर्थ में घटता है तभी तो भारत माँ की वन्दना में 'सुजलाम् सुफलाम् मलयजशीतलाम्' ये श्रेष्ठ विशेषण धरती माँ के अन्दर देकर एवं इस गीत को लिखकर श्री बङ्किमचन्द्र चट्टोपाध्याय अमर हो गये।

यह धरती माँ अदिति है, इसके टुकड़े नहीं किये जा सकते। नारी भी सन्तान रूपी धन के पालन की अखण्डनीय असीम क्षमता रखती है। अतः यह अदिति है। वात्सल्य पिता में भी है किन्तु उसके वात्सल्य में वह सहिष्णुता एवं धैर्य नहीं, जो सुकुमार नारी (माता) के पास है, जिसकी अपने कार्य को करने में असमर्थ नन्हें शिशु को आवश्यकता है, इसीलिये वह पिता की गोद को छोड़कर माता की ओर झपटता है। जहाँ असीम सुख एवं शान्ति है।

यह धरती माँ मही=महान् है, विश्रुती=विशेष श्रवण स्तवन की जाने योग्य है तो ये गौ एवं नारी भी इसी प्रकार हैं। यजुर्वेद ४।३ में "महीनां पयोऽसि" कहा है। यह मही=पृथिवी का पय उसमें प्रवाहित होने वाली जल की धारायें हैं जिससे वह सुजला एवं सुफला है। माता पक्ष में—मही का पय (रस) उस माता का वात्सल्य है जो शिशु के अन्दर नवजीवन का सञ्चार करता है। इस रस का होना माता एवं आचार्या दोनों के लिये यथावसर आवश्यक है। गौ पक्ष में–मही का पय (रस) अमृततुल्य गो-दुग्ध स्पष्ट है। पृथिवी नामों में पढ़े क्षमा, क्ष्मा, क्षितिः, पूषा आदि नाम भी व्युत्पत्ति एवं प्रकरण के अर्थ के अनुसार नारी, धरती एवं गौ के वाचक हैं एवं बन सकते हैं। यजु० ३८।३ में पूषा का "भूमि के सदृश पोषण करने हारी स्त्री" अर्थ ही ऋषि दयानन्द ने किया है।

अथर्ववेद के बारहवें काण्ड में आये हुये भूमि सूक्त में पृथिवी की महिमा जिन श्रेष्ठ शब्दों में गाई गयी है, वह विश्व में देश-भक्ति का प्रथम एवं अनूठा गान कहा जा सकता है। विश्वम्भरा, हिरण्यवक्षा, स्योना, शिवा, भूरिधारा इत्यादि सर्वश्रेष्ठ विशेषणों को देते हुए हम सबके लिये भूमि की उपयोगिता बताने के साथ-साथ श्रद्धाकुल मन की श्रद्धा का यह उत्कृष्ट विज्ञापन कहा जा सकता है। ज्ञान के आदि स्रोत एव धर्म के प्राणस्वरूप ईश्वरीय ज्ञान वेद में धरती माता का यह गान=स्तवन देखकर विश्व के लोग चकित रह गये। ओह! धरती माँ की महिमा इतनी महान् है इसमें ही सिंह व्याघ्रादि निवास करते हैं एवं देवता भी इसी में रहते हैं, यह सबको समान रूप से शरण प्रदान करने वाली है[1]। ठीक ही तो है 'माता भूमिः पुत्रो ऽहं पृथिव्याः' (अथ० १२।१।१२) यह धरती माँ है, और हम उसके पुत्र हैं।

---

१. अथ० १२।१।४६

इस पृथिवी सूक्त में आये प्रायः बहुत से विशेषण नारी एवं गौ परक भी घटते हैं। इस प्रकार लोक-विश्रुत तीनों गौ, पृथिवी एवं जन्मदात्री माता के नामों अर्थों एवं गुणों में अत्यधिक साम्य है। यह वेद, कोश तथा अन्य ग्रन्थों से स्पष्ट है। तीनों ही एक दूसरे के गुणों के अनुसार अपने आप में महान् हैं, पूजनीय हैं, महनीय हैं अतः कह सकते हैं कि मातृत्व के गौरवमय पद से बढ़कर कोई संसार का श्रेष्ठ पद नहीं हो सकता। वह माँ जो एक सन्तान का निर्माण करती है मानों वह राष्ट्र का निर्माण करती है, राष्ट्र पर शासन करती है। अंग्रेजी की यह उक्ति-"The hand that rocks the cradle rules the world." 'जो हाथ पालने को झुलाता है वही दुनियाँ पर राज्य करता है' ठीक चरितार्थ होती है। मातृत्व के इस गौरव को न समझ सकने के कारण ही आज यह दुर्दशा भावी देश के कर्णधारों की हो रही है, जो छिपी नहीं है।

—:०:—

अदिति माँ

सामान्यरूप से 'अदिति' शब्द की व्युत्पत्ति है 'न दिति (दो अवखण्डने धातु से) अदिति' अर्थात् जिसके खण्डन टुकड़े न किये जा सकें। वेदों में अदिति शब्द का पुष्कल प्रयोग प्राप्त होता है, जिनमें कहीं तो अदिति शब्द अखण्डनीय अविनाशी परमात्मा का वाचक कहीं पृथ्वी, वाणी एवं गौ तथा कहीं अखण्डनीय ज्ञान शक्ति वाली नारी का वाचक है। ऋषि दयानन्द ने 'अदिति' का नारी अर्थ करते हुए ऋ० १।४३।२ में 'यथा तोकाय अदिति.' जैसे उत्पन्न हुए बालक के लिए माता सुख देती है वैसे पवन सुखकारी हो, अर्थ किया है तथा ऋ०२।२९।३ के भाष्य में "अदिते=विदुषी माता" एवं ऋ०५।४२।२ में "अदितिः=पूर्ण सुख को देने वाली माता" ऐसा अर्थ लिखा है। यजु० ११।६१ में "अदितिः—अखण्डविद्या पढ़ाने हारी विदुषी स्त्री तथा १३।१८ में अदिति शब्द का अर्थ अखण्ड ऐश्वर्य वाले आकाश के समान क्षोभ रहिता स्त्री किया है। यजुर्वेद १३।१८ के मन्त्र में राजपत्नी के गुणों का वर्णन करते हुए राजकुल की स्त्रियाँ पृथ्वी एवं आकाशादि के समान धैर्यशालिनी हों ऐसा कहकर उन्हें अदिति शब्द से सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार—पृथ्वी माता, मातृभाषा (वाग्वा अदितिः श०ब्रा०६।५।२।२०) माता (जननी) गौ माता (ऋ० १।१५३।३) इन चारों को 'अदिति माँ' से सम्बोधित किया है। पृथ्वी माता के लिये तो यजु० ९।५ में 'अदितिं नाम वचसा करामहे' अर्थात् हम अदिति माता का वाणी से स्तवन करते हैं कहा है।

अदिति सम्बन्धी वेद के इन मनोहारी वर्णनों को देखकर किसी ऐसी दिव्या अदिति माताका चित्र मस्तिष्क में उभर जाता है जो विद्याविज्ञान से पूरित होने के कारण अखण्डीय शक्तिवाली एवं सब प्रकारसे ऐश्वर्य सम्पन्न सुख देनेवाली तथा अपनी वाक्पटुताके कारण

सर्वत्र समादृत हो । इस अदिति को नारी ही नहीं 'माँ'[1] का गौरव पूर्ण पद वेद में दिया गया है । निश्चय ही ऐसी अखण्डनीय शक्ति एवं क्षमता वाली माँ ही हो सकती है ।

मध्ययुग में नारी की अवमानना-प्रताड़ना सीमातीत हो गई । नारी को वेद शास्त्रों के अध्ययन से वञ्चित कर दिया गया तथा अत्यन्त पर्दा प्रथा में जकड़ कर उसे अदिति = बन्धनमुक्ता से बन्धन-युक्ता बना दिया गया । बेचारी विद्या से शून्य होने के कारण अन्ध विश्वासों में फँसी हुई अब अपने गौरवमय अदिति रूपी मातृत्व के कर्त्तव्य को भूल बैठी । कितना रोमांचकारी वह समाज और काल था कि जिसमें पुरुष ने नारी को एक स्थावर (जड़) सम्पत्ति पशु एवं मकान, वस्त्र के समान ही समझ लिया । यदि मकान आदि गिरवी रखे या बेचे जा सकते हैं तो कोई भी पुरुष अपनी पत्नी को भी बेच या गिरवी रख सकता है, मनमाना अत्याचार कर सकता है ऐसे पतित एवं दूषित विचार समाज को कुण्ठाग्रस्त कर चुके थे । ऐसी अवस्था में नारी के उस महिमामय स्वरूप का दिग्दर्शन महर्षि दयानन्द ने वेद का आधार लेकर किया ।

योग्य सन्तान उत्पन्न करने वाली विदुषी माता का ऋणी विश्व का प्रत्येक व्यक्ति होगा । निर्माण का यह कार्य वह भली-भाँति कर सके अर्थात् शिशु हृदयों में संस्कार बीजारोपित कर सके, इस लिये विधाता ने उसे सुकोमलता एवं भावुकता प्रदान की है । योग्य माताओं की गौरव गाथा से इतिहास भरे हुये हैं । उस समय के नारी के प्रति किये गये उत्पीडन से नारी की अधोगति से नारी तो उत्पीड़ित हुई ही किन्तु पुरुष भी कम बरबाद नहीं हुये क्योंकि निर्माण-कर्त्री के अभाव में उनका निर्माण कैसे होता । समय के अनुसार इस काल में नारियों को जब पढ़ने के लिये अग्रसर किया गया तो एक होड़ लग गई । आज घर-घर में बी. ए. एम. ए. इत्यादि उपाधि प्राप्त कन्यायें हैं किन्तु

१-अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः ।। ऋ०१।८९।१०।।

वैदिक आदर्शों से दूर "अदिति माँ" के स्वरूप से भिन्न इनके रहन-सहन हैं। आर्यसमाज ने संयम एवं नैतिकता की शिक्षा समाज को दी, जिसे प्राप्त कर प्रत्येक गृहस्थ को उच्च आदर्शों वाला बनना चाहिये था पर क्या हमारे परिवार इस बात के लिये तत्पर हैं ? ढेर सारे अस्वस्थ निर्बल रोगी संतानों की माँ 'अदिति माँ' नहीं हो सकती। संयम एवं आदर्शों का पालन करते हुये दिग्दिगन्त का मुख उज्ज्वल करने वाली एक सन्तति को बना देने वाली माँ 'अदिति' है।

आज एक ओर तो नारियों के हृदय में पुरुषों के प्रति अब तक उनके द्वारा किये गये अत्याचारों के कारण प्रतिहिंसा एवं प्रति-द्वन्द्विता काम कर रही है जिसके कारण वे सुपथ या कुपथ का विचार किये बिना आगे बढ़ रही हैं तो दूसरी ओर बनाव श्रृङ्गार के अत्यन्त प्रचुर प्रयोग एवं साधन बढ़ते जा रहे हैं। आखिर नारी का यह रूप प्रदर्शन क्यों ? पुरुष वर्ग को अपनी ओर आकृष्ट करने का ही तो यह घृणित साधन है। प्रतिद्वन्द्विता करते हुये व्यर्थ प्रतिहिंसा के कुछ आक्रोश में फँसकर नारी वर्ग ने अपनी कर्मभूमि गृह मर्यादा को भुला दिया। श्रृंगार के ये प्रसाधन इस बात को प्रमाणित करते हैं कि नारी समाज अब भी भले ही पुरुषों से किसी प्रतिशोध से ग्रस्त हो परन्तु उच्च डिग्री प्राप्त करके भी प्लास्टिक की गुड़िया के समान उनके हाथ की कठपुतली ही है। रूप-पिपासु समाज इस पिपासा को प्रसाधनों के द्वारा तृप्त करे, केवल मात्र यही तो अभिप्राय इस बाह्य फैशन के हैं। याद रखें, बाहर के जगमगाहट को देखने वाले ये चञ्चल नयन अन्दर के गुणों की भव्यता दिव्यता को आँक भी नहीं सकते। इन प्रसाधनों एवं बाह्य सौन्दर्य का जितना अधिक प्रयोग होगा, पैसा और समय तो व्यर्थ जायेगा ही किन्तु नारी की दिव्यता को समझने वाला पारखी भी समाप्त हो जायेगा। वेश भूषा की सादगी में हृदय की निर्मलता-सौम्यता सरलता

स्पष्ट भासित होती है। इन दैवी गुणों को खोकर मैं नहीं मान सकती कि नारी आज भी कुण्ठाग्रस्त बन्दिनी दासी के समान नहीं हैं। भले ही आज स्त्रियां उन्मुक्त वातावरण में बाजार सिनेमादि जा सकती हैं किन्तु उनका मन तो सदैव इसी बात से ग्रस्त है कि मैं आज कौन से ऐसे फैशन के परिधानों को धारण करूँ जिससे मेरे में नवीनता आये और अधिक से अधिक अपनी ओर अपने पति को झुका सकूँ। भला ऐसे तुच्छ विचारों में घिरी रहने वाली नारियाँ दिव्य समाज के निर्माण की योजना तैयार कर सकेंगी तथा उस अलौकिक सुख को प्राप्त कर सकेंगी? जिसके लिये यह हमारा उत्तम जीवन है। रूप दर्शन या दर्शाने की यह प्रवृत्ति समाज के लिये बड़ी घातक है। महिला वर्ग तब तक 'अदिति' के उस अदितित्व को अखण्डनीय शक्ति को प्राप्त कर सका है ऐसा कदापि नहीं कहा जा सकता। उत्तम वैदिक आदर्शों वाला समाज बनाने के लिये हमें बहुत शीघ्र सुशिक्षित कही जाने वाली नारियों की इस धारा को मोड़कर परिवर्तन करना होगा।

—:o:—

स्वयंवरा कन्या

स्वयं पतिं वृणोति या सा 'स्वयंवरा कन्या" एवं पतिं वृणोति या सा "पतिवरा कन्या" ये संस्कृत वाङ्मय के बहुत सुविख्यात प्रयोग हैं। व्याकरण के संज्ञायां भृतृ० (अष्टा० ३।२।४६) सूत्र से खच् प्रत्यय होकर ये प्रयोग सिद्ध हो जाते हैं। इन प्रयोगों को लक्षित करते हुये अपने स्वर्णिम इतिहास की ओर दृष्टिपात करने पर दो तथ्य सामने आते हैं।

(१) पुराकाल में गुण, कर्म, स्वभावानुसार कन्याओं को पति के चुनने के लिये स्वयंवर की पद्धति अत्यन्त प्रचलित थी।

(२) विदुषी सुयोग्या कन्या के स्वयंवर रचने पर दूर-दूर देशों से सुयोग्य विद्वान् राजे महाराजे उस कन्याललाम को प्राप्त करने के लिये प्रसन्नतापूर्वक पधारते थे।

वास्तव में यह पद्धति पूर्ण वेदानुकूल है। विवाह संस्कार गुण, कर्म, स्वभावानुसार[1] जब तक नहीं होते तब तक गृहस्थ-जीवन में सुख कहाँ? इस युग में महर्षि दयानन्द ही ऐसे युगनिर्माता दूरद्रष्टा पुरुष हुये हैं कि जिन्होंने युग एवं राष्ट्र की जर्जरित अवस्था के मूल कारण गृहस्थ जीवन के पतन को समझकर उसके निदान को विशेष रूप से वेदभाष्य के माध्यम से रखा। सहस्रों मन्त्रों के भावार्थ एवं पदार्थ लिखते हुये महर्षि ने गुण, कर्म, स्वभावानुसार विवाह एवं स्वयंवर पद्धति पर बल दिया। ऋषि से पूर्व अन्य भाष्यकारों को जिन मन्त्रों के अर्थों में असंगत व्यर्थ की बातें ही सूझती रहीं उन्हीं मन्त्रों के इतने सुन्दर अर्थ करना ही वास्तव में हमारे ऋषि का ऋषित्व था।

---

१. मनु महाराज ने भी कहा है—

कामममरणात् तिष्ठेत् गृहे कन्यर्त्तुमत्यपि।
न चैवैनां प्रयच्छेत्तु गुणहीनाय कर्हिचित्॥ (मनु० ९।८९)

ऋग्वेद १०।२७।१२ में कहा है "स्वयं सा मित्रं वनुते" अर्थात् कन्या स्वयं अपने योग्य मित्र पति को चुनती है। कन्या के द्वारा स्वयं पति का चुनाव करना ही स्वयंवर विवाह तथा ऐसी कन्या "स्वयंवरा" है। ऋग्वेद १।२२।११ में कहा है—

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।

अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥

अर्थात्—(अच्छिन्नपत्राः देवीः नृपत्नीः) अविच्छिन्न कर्मवाली विदुषी स्त्रियाँ (महः) बड़े (शर्मणा अवसा) गृह के सुख एवं रक्षा से (नः) हमको अर्थात् विद्वानों को (सचन्ताम्) प्राप्त हों।

यहाँ मन्त्र से स्पष्ट है कि विद्वान् पुरुषों को विदुषी नारियाँ जब प्राप्त होंगी तभी विद्या गुण-कर्म-स्वभाव की तुल्यता से सुख हो सकेगा। इस सम्बन्ध में उषा देवता वाला ऋ० प्रथम मण्डल का ४८ वाँ तथा १२३ वाँ सूक्त एवं यजुर्वेद का अष्टमाध्याय तो सम्पूर्ण ही द्रष्टव्य है। इस ४८ वें सूक्त के सप्तम मन्त्र में बताया कि (परावतः) दूर देश से जिस प्रकार यह सुभगा उषा (प्रातःकालीन लालिमा) सब पदार्थों से संयोग करती है। उसी प्रकार स्वयंवर विधान कर कन्याओं के दूरस्थ[1] योग्य वर के साथ विवाह सम्बन्ध होने चाहियें। तात्पर्य यह हुआ कि विवाह सम्बन्ध दूर देश में एवं योग्यतानुसार होने पर ही लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

यजुर्वेद ३३।५९ में कहा है कि सरमा = समानता से रमण करने वाली अर्थात् पति के अनुकूल चलने वाली प्रथमा + प्रख्यात स्त्री जो

---

१. ऋषि दयानन्द ने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में निकटस्थ देश के विवाह में आठ प्रकार के दोष बताये हैं, अतः दूरस्थ देशों से विवाह सम्बन्ध ही उचित है।

सुन्दर स्वम् = उच्चारण को जानती है वह रुग्णम् = रोगियों को विदत् = जाने ऐसा कहा है। अर्थात् नारी गृह-सञ्चालिका होने के कारण इतनी सुदक्षा हो कि वह घर के रोगी व्यक्तियों की औषधि स्वयं कर ले, चतुरवैद्या[1] हो यह उसके लिये अत्यावश्यक है।

यहाँ उव्वट महीधर आदि भाष्यकारों ने सरमा का देवशुनी = देवों की कुतिया अर्थ करके महान् अनर्थ किया है। स्पष्ट है कि इन भाष्यकारों ने 'सामाजिक हितार्थ वेद का उपयोग सम्भव है' ऐसा स्वरूप वेद का समाज के सामने रखने का कोई प्रयास नहीं किया।

इस प्रकार सहस्रशः मन्त्रों के देखने से एक ही बात विशेष रूप से विदित होती है कि नारी जाति को अत्यन्त योग्य एवं अपने सदृश वर की प्राप्ति करके गृहस्थ जीवन को स्वर्ग तुल्य बना देना चाहिए। अनमेल विवाह गृहस्थ जीवन के पतन के कारण हैं जिससे आज प्रायः सभी परिवार संत्रस्त हैं।

---

१. इसीलिए सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास में महर्षि दयानन्द ने लिखा "जैसे पुरुषों को व्याकरण धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिए वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिए।"

वास्तव में पाककलाविशारदा एक नारी के लिए 'चतुर वैद्या' बनना कठिन नहीं है, प्रत्युत अत्यन्त स्वाभाविक है, क्योंकि जिन धनिया जीरा, अजवायन आदि पदार्थों के गुणों को जानती हुई वह अपनी सुपाच्य सुस्वादु रसवती (रसोई) का निर्माण करती है उन्हीं पदार्थों से (उनके गुण-दोषों को समझते हुये) वह घर के किसी आतुर की औषधि भी तो तैयार कर सकती है। नारी यदि एक कुशल ऋतु अनुकूल भोजन निर्मात्री है तो वह निश्चित रूप से एक चतुरवैद्या भी है।

जैसा कि ऊपर लिखा गया है कि पुराकाल में स्वयंवर के द्वारा कन्याओं को योग्य वर चुनने का अधिकार था, आज वह परिपाटी न केवल समाप्त हो चुकी है, बल्कि दहेज के लोभी भ्रष्ट पतित व्यक्तियों द्वारा इस वेदानुकूल पद्धति की उपेक्षा करते हुये नारी[1] जाति का अत्यन्त अपमान किया जा रहा है। स्वयं में अनेकों न्यूनताओं के होते हुये भी योग्य कन्याओं के साथ सम्बन्ध करते समय ठहराव (दहेज) आदि करते हुये आज पुरुष वर्ग को कोई संकोच नहीं है, इससे बढ़कर नारी जाति का क्या अपमान होगा ? इन धनलिप्सुओं की धनविषयक क्षुधा जहाँ शान्त हो पाई वहीं (धनहीन सैकड़ों योग्य कन्याओं का अनादर करके) विवाह सम्बन्ध स्थिर कर लिये जाते हैं। कितने ही ऐसे परिवार हैं जहाँ शीलगुण सम्पन्न वास्तविक देवी कन्याओं को कुछ न समझ कर ठुकराया गया। इस दृष्टि से 'स्वयंवरा कन्या' या 'पतिवरा कन्या' ये प्रयोग अपने आप में आज आहत और व्याहत से प्रतीत हो रहे हैं।

क्या आज का युवावर्ग अपनी अनित्य धन एवं रूप पिपासा का परित्याग कर अपने पुरुषार्थ पर भरोसा करते हुये नारी जाति के आन्तरिक दिव्य गुणों का सम्मान करके वेदोक्त स्वर्गोपम गृहस्थ जीवन का निर्माण कर सकेगा ?

—:०:—

1. इस युग की दूषित शिक्षा के परिणाम स्वरूप आज नारी जाति भी अधिकांश रूप में अपने दिव्य गुणों को त्याग कर, कुछ और ही रूप लेती जा रही है यह भी अत्यन्त कष्ट का विषय है।

शोकशंकु कन्या या मोदसिन्धु कन्या

नारी समाज के प्रति युग-युग से समय-समय पर कुछ ऐसी धारणायें तत्कालीन व्यवस्थापकों द्वारा यत्र-तत्र प्रकट की गई हैं कि उन्हें देखकर किसी भी विचारशील को ग्लानि हुए बिना नहीं रह सकती। प्रकृत में प्रसिद्ध इतिहासकार रमेशचन्द्र मजुमदार ने ऐतरेय ब्राह्मण ७।१५ का उल्लेख देते हुए कन्या को शोकशंकु बताया है तथा अथर्व० ६।११।३ के आधार पर पुत्री के जन्म पर वैदिककाल में दुःख प्रकट किया जाता था ऐसा सिद्ध किया है। ऐतरेय ब्राह्मण में ऐसा कोई प्रसंग नहीं है जिससे यह अर्थ निकाला जा सके कि कन्या शोकशंकु है। द्वितीय स्थल अथर्ववेद का जिससे पुत्री के जन्म पर दुःख होना सिद्ध किया है वह मन्त्र इस प्रकार है—

प्रजापतिरनुमतिः सिनीवाल्यचीक्लृपत्।
स्त्रैषूयमन्यत्र दधत्पुमांसमु दधदिह॥

अथर्व० ६।११।३॥

ऋषि दयानन्द ने इस मन्त्र को पुंसवन संस्कार में प्रमाण रूप में उद्धृत किया है। इस मन्त्र का देवता प्रजापति है। इस सूक्त के तीनों मन्त्रों में ही बताया है कि पुरुष के दृढांग एवं बलयुक्त (वीर्यवान्) होने पर ही पुत्र की प्राप्ति हो सकती है। प्रथम मन्त्र में तो शमी नामक वृक्ष पर उत्पन्न हुआ पीपल पुत्रप्राप्ति की औषधि है, यह बताया हैं। अब इस तृतीय मन्त्र में यह कहा है कि अन्यत्र = दूसरी दशा में ऊपर कहे हुए पुरुष के दृढांग अवस्था से भिन्न होने पर अर्थात् स्त्री के रजाधिक्य = बलवती होने पर एवं पुरुष के कम वीर्यवान्, बलवान् होने पर स्त्रैषूयम् = कन्या जन्म सम्बन्धी कर्म को प्रजापतिः = परमेश्वर दधत् = धारण करता है। इह = इस विधि से अर्थात् पुरुष के वीर्याधिक्य होने पर उ = निश्चय ही पुमांसम् = पुत्र

को वह परमात्मा दधत्=धारण करता हैं यह इस मन्त्र का संक्षिप्तार्थ है।

अब पाठक देखें कि इस मन्त्र में पुत्र एवं पुत्री को प्राप्त करने की भिन्न-भिन्न स्थितियाँ ही बताई गई है पुत्री जन्म पर शोक कहाँ प्रकट किया गया है ? यह तो अपनी व्यक्तिगत आवश्यकता एवं इच्छा पर निर्भर करता है कि कोई मन्त्रोक्त प्रकार के द्वारा पुत्री, को प्राप्त करे अथवा पुत्र को। परन्तु सच तो यह है कि इन लोगों ने अपनी मनोनुकूल स्थिति के अनुरूप सर्वत्र मन्त्रों के अर्थों का संगतिकरण कर दिया हैं जिसमें इन लोगों को सायणादि भाष्यकारों की पुष्टि प्राप्त हो गयी है। स्त्रियों के प्रति जो इन श्रीमानों के उपेक्षायुक्त एवं घृणास्पद विचार थे उससे व्याकरण के ग्रन्थ भी अछूते न रह सके। जहाँ सम्भव हो सका वहीं ऐसे दूषित विचार वाले उदाहरण दे मारे। तद्यथा—

कन्यया शोकः (काशिका २। ३। २३)
शोककरी कन्या (काशिका ३। २। २०)

ऋषि दयानन्द ने अपने अष्टाध्यायी भाष्य में इन सब तुच्छ विचारमूलक उदाहरणों को बदलकर अविद्यया शोकः, शोककरी अविद्या ऐसा रख दिया हैं। जब व्याकरण के ग्रन्थों में ऐसे कुत्सित उदाहरणों की योजना हो सकी तो साहित्य ग्रन्थों में तो ऐसे विचारयुक्त वाक्यावलियों का जोड़ना पदे-पदे ही सम्भव था तदनुसार ऐसा ही हुआ। बिना प्रसंग बेचारी स्त्री को घसीट लाया गया कहीं तो कहा गया भार्यासु सुविरक्तासु··· =(पञ्चतन्त्र मित्रसम्प्राप्ति) अर्थात् विरक्त हुई-२ भार्या का विश्वास न करे। क्यों जी ! विरक्त हुए-२ पति का विश्वास क्यों करें ? सुभाषितरत्नभाण्डागारम् में "स्त्री-स्वभावनिन्दा" प्रकरण को लेकर कई पृष्ठ काले किये गये हैं पर स्त्रीप्रशंसा में एक भी वाक्य नहीं, यह तुच्छाशय इन साहित्यकारों का ही तो कमाल है।

जो रही सही स्थिति स्त्रियों की साहित्यकारों से भी बच गई थी वह श्री शंकराचार्य जी की चर्पटमञ्जरी ने चर्पट कर दी। उन्होंने बत्तीस श्लोकों वाली अपनी इस अतीव लघु पुस्तिका में आठ बार स्त्री को याद किया है, किन्तु सर्वत्र बुरे रूप में ही। एक भी स्थल में स्त्री के अच्छे स्वरूप को याद नहीं किया। ऐसा प्रतीत होता है कि उनके लिये स्त्री दुर्गुणों की खान है। कभी कहा—(१) "विज्ञान्महाविज्ञतमोऽस्ति को वा नार्या पिशाच्या न च वञ्चितो यः" (२) "का शृङ्खला प्राणभृतां हि नारी" (३) विश्वासपात्रं न किमस्ति नारी" (४) "किं तद्विषम् भाति सुधोपमं स्त्री" अर्थात् शंकराचार्य जी का अभिमत यह है कि –(१) संसार में विज्ञों से भी बढ़कर महाविज्ञ वही व्यक्ति है जो नारी रूपी पिशाचिनी के द्वारा ठगा नहीं जाता। (२) प्राणियों के लिए सबसे बड़ी जंजीर स्त्री है। (३) संसार में विश्वास के अयोग्य वस्तु नारी है। (४) अमृत के समान लगने वाला हलाहल जहर नारी है।

उपर्युक्त उदाहरणों के सम्बन्ध में कथंचित् यह सोचा भी जाये कि शंकराचार्य जी संन्यस्त व्यक्ति थे अतः उन्होंने अपनी दृष्टि से स्त्री को हलाहल विष बताया तो भी बात जँचती नहीं। शंकराचार्य जी ने यह चर्पटमञ्जरी केवल संन्यस्त पुरुषों के लिए ही नहीं बनाई यह तो मानव मात्र की व्यवस्था की बात है। दूसरा प्रश्न यह है कि संन्यस्त होकर भी शंकराचार्य जी को स्त्री का मातृरूप देवीरूप जो अत्यन्त पावन पवित्र है दीखा ही नहीं ? सर्वत्र विष या नरक ही दिखाई पड़ा ! इतना घोर पक्षपात नारी के प्रति ? नारी को नरक का द्वार या विष की संज्ञा शंकराचार्य जी के द्वारा प्राप्त करने पर नारी कदापि उन्हें गुरु स्वीकार नहीं कर सकेगी। जगद्गुरु तो वह देव दयानन्द था जिसने स्त्री जाति ही क्या प्राणिमात्र की वकालत करने में अपना सर्वस्व न्योछावर कर दिया। नारी को सिर की पगड़ी बताया उन्हें वेद पढ़ने का अधिकार पुनः दिलाया। वास्तव

में शंकराचार्य जी के नाम पर लोगों के द्वारा इतने तुच्छ शब्दों का नारी के प्रति प्रयोग करना यह उनकी अपनी ही आत्मदुर्बलता का परिचायक हैं।

नारी, स्त्री के प्रति उद्गीर्ण इन क्षुद्र विचारों का वेद से कहीं दूर का भी सम्बन्ध नहीं है। वेद में तो नारी को सुमंगली = मंगल आचरण करने वाली प्रतरणी = दुःख शोकादि से पृथक् करने वाली बताया गया है। तद्यथा—

सुमंगलीरियं वधूरिमां समेत पश्यत।
सौभाग्यमस्यै दत्त्वायाथास्तं वि परेतन ॥

ऋ० १०। ८५। ३३।

अर्थात्—यह वधू मंगल चिह्न युक्त है, आप लोग आइये और इसे सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद देकर अपने घर को जाइये। इसीलिये तो नारी को वेद में समाज का केतु = झण्डा मस्तक (ऋ० १०।१५९।२) बताया है मनुस्मृति में तो नारी की प्रतिष्ठा सम्मान करना मानवीय आचार संहिता के अन्तर्गत ही मान लिया गया। नारी का कन्या रूप जिसे इन लोगों ने शोकशंकु बताया वह कितना मनमोहक और सुन्दर है, तभी तो यास्क मुनि ने निरुक्त में कन्या शब्द का निर्वचन करते हुए लिखा "कन्या कमनीया भवति कमनेनानीयत इति वा कनतेर्वा स्यात्कान्तिकर्मणः" (निरु० ४।१५) अर्थात् "कन्या वह है जो स्वरूप से ही कमनीय होती है, अथवा बड़ी प्रसन्नता से लाई जाती है। कान्ति अर्थ वाली कन धातु से भी कन्या शब्द सिद्ध होगा अर्थात् जो स्वाभाविक कान्तियुक्त होती है।" विवाह में 'कन्यादान' विधि को, पुण्यसूचक समझना एवं वर्ष में किसी दिन कन्याओं को निमंत्रित करके भोजन कराने की लौकिक प्रथायें भी कन्या के शुभसूचक होने का ही प्रतीक मानी जानी चाहिये।

महाभारत स्वर्गारोहण पर्व में "गर्भिणी लभते पुत्रं कन्यां वा बहुभागिनीम्" (महा० ५।५३) कहकर महाभारत श्रवण का लाभ ही भाग्यवती कन्या का जन्म कहा है।

संस्कृत में सीमन्तक, सीमन्त एवं सीमन्तिनी तीन शब्द हैं। सीमन्तक सिन्दूर का वाचक है एवं सीमन्त का अर्थ है सिर के बालों की विभाजक रेखा अर्थात् मांग। सीमन्तः अस्याः अस्तीति सीमन्तिनी यहाँ इनि प्रत्यय होकर सीमन्तिनी शब्द महिला, नारी जाति, का वाचक हो गया। मांग में सिन्दूर भरना, माँग निकालना यह लौकिक सौभाग्यसूचक प्रथा है। सोलह संस्कारों में सीमन्त + उन्नयन = सीमन्तोन्नयन संस्कार जो गर्भावस्था के समय का तृतीय संस्कार है उसे भी सीमन्तोन्नयन इसीलिये कहते हैं कि उस संस्कार में एक क्रिया ऐसी है जिसमें बालों में कंघी कर मांग निकाल कर बालों को बाँधा जाता है। इसी प्रकार सीमन्तिनी स्त्री वाचक शब्द तो अपने आप पुकार-पुकार कर सौभाग्य सूचक अर्थ को कह रहा है। सीमन्तिनी का अर्थ ही सौभाग्य-युक्ता हुआ जो कि नारी जाति से सम्बन्धित है, पुनः किस प्रकार वह शोक-प्रदा कहला सकती है?

हमारा इतिहास इस बात का प्रबल रूप से साक्षी है कि हमारे पूर्वज पुत्र एव पुत्री में कोई अन्तर न समझते हुए दोनों का समान रूप से पालन-पोषण एवं शिक्षण करते थे तभी तो उन ऐतिहासिक विदुषी अप्रतिम नारियों पर सम्पूर्ण जन समाज को गर्व है। दो कुलों की लाज यह कन्या किसी के लिये भी गौरव का विषय हो सकती है, इसी प्रकार निःसन्दिग्ध कहा जा सकता है कि पुत्री या कन्या शोकशंकु नहीं अपितु मोदसिन्धु है।

—:०:—

कन्या की समस्या

'कन्या' शब्द की व्युत्पत्ति चाहे कितनी ही कमनीय क्यों न हो, पर आज के युग में 'कन्या' एक सामयिक समस्या का रूप धारण कर चुकी है। सम्प्रति कन्या को एक घटिया चीज समझ कर विवाह के अनन्तर जो मनमाने कुव्यवहार उसके श्वसुर गृह या पति द्वारा उसके साथ किये जाते हैं वस्तुतः यह बहुत बड़ा जुल्म है। पत्नीत्व को प्राप्त ऐसी स्त्री का अनादर या अनुचित व्यवहार करने का उसके पति को कोई अधिकार नहीं है इस विषय में वेद स्पष्ट कहता है—

स ईं वृषा न फेनमस्यदाजौ स्मदा परैदप दभ्रचेताः।
सरत्पदा न दक्षिणा परावृङ् न ता नु मे पृशन्यो जगृभ्रे॥

(ऋ० १०।६१।८)

अर्थात्—दुहिता का वह पति अपने पत्नी से उत्तम सन्तान तो प्राप्त करे किन्तु (दभ्रचेताः स्मत्) तुच्छ मन वाला बनकर हमसे वह दूर ही रहे (दक्षिणा पदा न अपसरत्) कन्या को दिये धन के प्रति पैर न बढ़ाये, उसे दूर से ही त्याग दे अर्थात् लालची न बने। यहाँ स्पष्ट कन्या के आदर करने एवं लालची न बनने का आदेश है। इससे आगे द्वितीय मन्त्र—"मक्षू न वह्निः प्रजाया उपब्दिरग्निम् ·····' में भी कन्या को उसका पति कदापि कष्ट न दे बल्कि उसका उचित सम्मान करे यह कहा है पर इस युग में धन के लोभियों की संख्या इतनी अधिक बढ़ चुकी है कि वात्सल्य की तुला में पुत्र-पुत्री दोनों एक होते हुए भी पुत्री माता-पिता के लिये सदैव चिन्तनीय विषय बनी रहती है।

पहिले लोग कन्याओं को इसलिये नहीं पढ़ाते थे कि इन्हें तो दूसरे के घर ही जाना है, बाद में इसलिये पढ़ाने लगे कि चलो पढ़ी-

लिखी कन्यायें होंगी तो अच्छा घर-वर मिल जायेगा, पर पढ़ी-लिखी कन्याओं की तो (उसी अनुपात से उच्च घर-वर खोजने के कारण) और भयावह समस्या हो गई। वस्तुतः देखा जाये तो यह उस कुशिक्षा का ही परिणाम हुआ कि शिक्षित लड़कियाँ और भी भार बन गईं। जिस शिक्षा में शरीर, मन एवं इन्द्रियों के संयम तथा आत्मिक, बौद्धिक एवं मानसिक विकास की चर्चा समाविष्ट न हो वह शिक्षा कैसी ? जिस शिक्षा के द्वारा स्त्री एवं पुरुष की स्वाभाविक क्षमताओं के अनुसार उनके कुछ भिन्न-भिन्न कर्त्तव्यों एवं मर्यादाओं पर समुचित प्रकाश न डाला जाता हो ऐसी शिक्षा तो वास्तव में बोझ ही है। आज का प्राणी इस बोझ से बोझिल है, प्रत्येक क्षण सतर्क है कि कहीं उठते-बैठते मेरे वस्त्रों में सिलवट न न आ जाये, साड़ी की क्रीज़ न बिगड़ जाये या लिपिस्टिक का रंग न उड़ जाये। ये मनोवृत्ति आज की शिक्षा की देन है, जिससे पढ़ी-लिखी कन्या अधिक ही समस्या बन चुकी है। वर एवं कन्या उभय-पक्ष में मनोवृत्तियों के सुधार की आवश्यकता है।

वेद में नारी को बहुशः विदुषी बनाने की बात कही है। विदुषी का तात्पर्य है जिसे वास्तव में धर्म-अधर्म, संयम नियम एवं शरीर आत्मा सम्बन्धी वास्तविक दर्शन प्राप्त हो। जिस पुत्री के अन्दर सच्ची वेद की शिक्षा के द्वारा कूट-कूट कर यह बात बाल्यकाल से ही प्रविष्ट कर दी जायेगी वह गृहस्थाश्रम में प्रविष्ट होकर भी घिनौने, बाह्य शरीर प्रदर्शन वाले फैशन में क्यों फँसेगी।

ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के १२३ वें सूक्त के ११ वें मन्त्र में उषा की उपमा देते हुये कन्या को सुसंकाशा, मातृमृष्टा जैसे सुन्दर शब्दों से सम्बोधित किया गया है। "सुसंकाशा कन्या" का अर्थ है सु=अच्छी विद्या के कारण सम्=भली प्रकार, काशा=प्रकाशित होने वाली=भली लगने वाली कन्या। इसी प्रकार 'मातृमृष्टा' का अर्थ है मातृ=विदुषी माता की सत्यशिक्षा के द्वार मृष्टा=शुद्ध-

पूत हुई कन्या। अथर्ववेद में कुलं पाति इति कुलपा (अथर्व० १।१४।३) शब्द से कन्या को सम्बोधित किया गया है। ये शब्द कन्या को पूर्ण योग्य बनाने की सूचना दे रहे हैं, क्योंकि योग्य कन्यायें ही आगे चलकर समाज का उचित निर्माण कर सकेंगी।

कन्या की शिक्षा के सम्बन्ध में ऋग्वेद ७ वें मण्डल के ३४ वें सूक्त के १ से लेकर ७ संख्या तक के मन्त्र अत्यन्त ही द्रष्टव्य हैं। इस सूक्त के चौथे मन्त्र में कहा है—

"आ धूर्ष्वस्मै दधाताश्वानिन्द्रो न वज्री हिरण्यबाहुः"

"अर्थात् हे पुत्रियो! तुम इस प्रकार विद्याग्रहण बड़े संयम नियम से करो जैसे सारथी घोड़ों को रथ में जोड़कर नियम से चलाता है।"

बच्चों को अपने हित अहित का पता नहीं होता। कभी-कभी वे अध्ययन से उद्विग्न मन होकर शरारू होने लगते हैं, ऐसे समय पर योग्य शिक्षक अपने आपको संवेदनशीलता में डुबोकर कुछ निर्देश या उपदेश उन्हें सुपथ पर लाने के लिये देते हैं। ठीक इसी भाव का इस सूक्त का पाँचवाँ मन्त्र देखें। मन्त्र है—

अभि प्र स्थाताहेव यज्ञं यातेव पत्मन्त्मना हिनोत।

अर्थात् "अरी बेटियो! तुम अपने विद्या प्राप्ति रूपी यज्ञ को (हिनोत) बढ़ाओ, उसमें शिथिलता मत करो जैसे (अह इव) दिन क्रम से आते और जाते रहते हैं जिस प्रकार (याता इव) बटोही बराबर चलते रहते हैं उसी प्रकार तुम भी निरन्तर गतिमान् हो जाओ अन्यथा यह समय हाथ नहीं आयेगा।" कितनी मनोहारी यह शिक्षा वेद की है। द्वितीय मन्त्र में यह भी कहा है कि— "कन्याओ! तुम पढ़ाने वाली शिक्षिकाओं की बात को ऐसे ध्यान से सुनो जैसे तुम्हारे कान में (शृण्वन्ति आपो अधः क्षरन्तीः) ज्ञान रूपी जल की धारा पड़ रही हो एवं तुम भूगर्भ आदि विद्याओं को भी प्राप्त करो।"

इन्हीं मन्त्रों में यह भी कहा है कि कन्यायें शूर वीर तथा पृथिवी के समान सहनशील एवं उत्साहिनी हों (देखें ऋ० ७।२४।१) इन मन्त्रों पर ध्यान देने से पता चलता है कि कन्या शिक्षा का महत्त्वपूर्ण अंग उसको सबल, उत्साहित, कर्त्तव्यपरायण, नम्र, सुशील एवं विवेकशील बनाना है। ठीक इसके विपरीत आज की शिक्षा में उच्छृंखलता इन्द्रिय-असंयम एवं कायरता समाई हुई है। आज स्त्रियों में आत्मबल तो इतना भी नहीं रह गया कि रास्ते में जाते हुवे कोई पापी दुष्ट आ जाये, तो उसे मजा चखा सकें। अब नारी की सुरक्षा के लिये सदैव एक सुरक्षक चाहिये पर ऐसा सर्वदा तो सम्भव नहीं। जंगल में सिंहनी अपनी सुरक्षा स्वयं करती है उसकी सुरक्षा सिंह नहीं करता। इसलिये शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिसमें आत्मबल विकसित हो, वीरता कर्मठता हो।

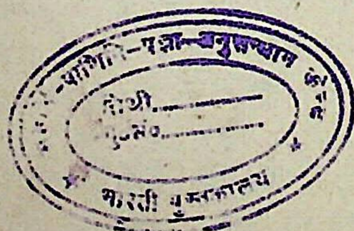
वेद में नारियों को गृह-कार्यकुशल सन्तानों की शिक्षा में निपुण एवं सभी विद्याओं का ज्ञान प्राप्त करने के लिये बार-बार कहा है। इसका तात्पर्य यह है कि उसे गृह कुशल तो होना ही है पर अन्य विद्याओं को भी पूर्णरीति से जानकर सामाजिक कार्यकुशल भी बनाना हैं। स्त्री की सीमा रेखा न केवल घर है न केवल बाहर, अपितु दोनों हैं। वास्तविक ज्ञान प्राप्त कर ही वह दोनों कर्त्तव्यों को मर्यादित रीति से भली-भाँति निभा सकेगी। यदि यह माना जाये कि विदुषी स्त्री केवल घर के कर्त्तव्यों का निर्वाह करती रहे तो इसका तात्पर्य यह होगा कि उसकी योग्यताओं से समाज लाभान्वित न हो। यदि वह केवल सामाजिक कार्य करते हुये घर की नितान्त उपेक्षा कर दे तो यह भी अत्यन्त निन्दनीय है, अतः सुशिक्षिता स्त्री को भी गृहकार्य कुशल होना ही चाहिये। कन्या को विदुषी बनाना अधिकांश रूप में वास्तव में कुल के गौरव एवं यश के लिये होता है—जीविकोपार्जन के लिये नहीं, (लड़कों की समस्या इससे भिन्न है) अतः उसे डिग्रियों की माला पहिनाने की अपेक्षा वास्तविक ज्ञान

धारा से सिक्त करना होगा। जिस घर में ऐसी ज्ञानवती, मृदुभाषिणी, वेदाध्ययन करने वाली कन्या होगी वह कुल कैसे धन्य नहीं होगा ? थोड़ा दृष्टिकोण बदल कर लोगों का अन्धानुकरण न करते हुए साहस करके ऐसी कन्यायें बनाकर तो देखिये। फैशन परस्त अन्य कन्याओं की अपेक्षा आपकी कन्या का प्रत्येक स्थान में कितना आदर होता है यह आप स्वयं देख लेगें। इस सम्बन्ध में ऋषि दयानन्द ने ऋग्वेद ६।६।१।१ के भावार्थ में तो यहाँ तक कहा है—

"जो स्त्री विद्याशिक्षायुक्त वाणी को ग्रहण करती है, वह अनादिभूत वेद विद्या को जानने योग्य होती है, वह जिसके साथ विवाह करे उसका अहोभाग्य होता है यह जानने योग्य है।"

योग्य कन्याओं के सम्बन्ध में ऋषिवर के कितने ऊँचे ये उद्‌गार हैं। यह वास्तविकता है कल्पना नहीं। इस प्रकार की कन्याओं का आज भी ऐसा ही आदर समाज में सम्भव है अतः विदुषी कन्या समस्या नहीं।

—:०:—



सिनीवाली-राका-कुहू-देवपत्नी आदि नारियाँ

नारी जाति को किन-किन महत्त्वपूर्ण शुभ गुणों से विभूषित होना चाहिये इसका वर्णन अथर्ववेद में सप्तम काण्ड के ४६,४७, ४८,४९ वें सूक्त में एक ही स्थान पर बड़ी ही सुन्दरता से आया है।

सप्तम काण्ड के ४६ वें सूक्त में कुल तीन मन्त्र हैं, और इन मन्त्रों का देवता (प्रतिपाद्य विषय) सिनीवाली है। सिनीवाली का अर्थ बहुत अन्न वाली, अन्नपूर्णा नारी अथवा स्नेहशील नारी है। ऋषि दयानन्द यजु० ३४।१० में सिनीवाली का अर्थ लिखते हैं--"सिनी प्रेमबद्धा बलकारिणी च"। निरुक्त में—सिनमन्नं भवति सिनाति भूतानि, वालं पर्व वृणोतेः तस्मिन् अन्नवती (निरु० ११। ३१) ऐसी व्युत्पत्ति सिनीवाली की वर्णित है। अर्थात् सिन कहते हैं अन्न का, जो अन्न वाली है, वही सिनीवाली हुई। निरुक्त में-- सिनीवाली-राका-कुहू ये सब देवपत्नियाँ[1] मानी गई हैं, जैसा कि कहा है--सिनीवाली कुहूरिति देवपत्न्यौ······या पूर्वाऽमावास्या सा सिनीवाली योत्तरा सा कुहूरिति (निरु० ११।३१) शतपथ ब्राह्मण में "योषा वै सिनीवाली" (श० ६।५।१।१०) ऐसा कहा है अर्थात् स्त्री की ही संज्ञा सिनीवाली है क्योंकि वह होती ही अन्नपूर्णा है।

४७ वें सूक्त का देवता कुहू है। इस सूक्त में कुल दो मन्त्र हैं। कुहू अद्भुत स्वभाव वाली (आकर्षण शील स्त्री) को कहते हैं। यहाँ भी निरुक्त के पूर्वोल्लिखित स्थल द्रष्टव्य हैं।

४८ वाँ सूक्त राका देवता वाला है। इसमें भी दो मन्त्र हैं। राका पौर्णमासी को कहते है। निरुक्त में "राका रातेर्दानकर्मणः" (निरु०

1. अचेतन देवों के व्यवहार पक्ष में किसी भी पदार्थ की दिव्य शक्ति को स्त्रीलिङ्ग में 'देवपत्नी' शब्द से व्यवहृत किया जाता है। चेतनों के व्यवहार में देवपत्नी शब्द का अर्थ होगा देव=विद्वान् या राजा की पत्नी।

११।३०) ऐसी व्युत्पत्ति है अर्थात् दान अर्थ वाली रा धातु से राका शब्द सिद्ध हुआ। पौर्णमासी का चाँद समस्त संसार को अमृत रूपी सुख का दान करता है अतः वह राका है। इसी प्रकार स्त्रियाँ भी अपने नैसर्गिक स्वभाव से गृह में सुख, सुसन्तान एवं हवि आदि प्रदान करती हैं, अतः वे भी राका शब्द से सम्बोधित की गईं।

अन्तिम ४९ वें सूक्त का देवता 'देवानां विदुषां राज्ञां पत्नी = देवपत्नी' है। अब आप क्रमशः इन सूक्तों में आये मन्त्रों के संक्षेपार्थों का अवलोकन कीजिये—

सिनीवालि पृथुष्टुके या देवानामसि स्वसा।
जुषस्व हव्यमाहुतं प्रजां देवि दिदिड्ढि नः॥

अथ० ७।४६।१॥

(पृथुष्टुके सिनीवालि) हे बहुप्रशंसित अन्नपूर्णे ! अथवा स्नेहशीले गृहदेवि ! (या) जो तू (देवानां स्वसा असि) दिव्य गुणों की प्रकाशिका है या देवों की भगिनी है सो तू (हव्यम् आहुतम् जुषस्व) दी हुई हवि का सेवन कर एवं हे देवि ! (नः प्रजाम् दिदिड्ढि) हमें सुसन्तान प्रदान कर।

इस मन्त्र से स्पष्ट है कि सुशिक्षित प्रशंसा के योग्य नारी से दो अपेक्षाएँ की गई हैं। प्रथम तो वह "जुषस्व हव्यमाहुतम्" गृह में श्रेष्ठ धार्मिक यज्ञमय सुन्दर वातावरण को बना रक्खे। दूसरे वह 'प्रजां दिदिड्ढि नः' = सुसन्तान निर्माण करे। यही अपेक्षायें द्वितीय मन्त्र में भी हैं—

या सुबाहुः स्वङ्गुरिः सुषूमा बहुसूवरी।
तस्यै विश्पत्न्यै हविः सिनीवाल्यै जुहोतन॥

अथ० ७।४६।२॥

यहाँ उस सिनीवाली अन्नपूर्णा नारी को (सुबाहुः) श्रेष्ठ

भुजाओं वाली अर्थात् शारीरिक शक्ति संपन्न (स्वङ्गुरिः)[1] अच्छी उँगलियों वाली (सुषूमा) अच्छे गुणों की ओर प्रेरित करने वाली (बहुसूवरी) वीर पुत्रों को जन्म देने वाली आदि विशेषणों से सुभूषित करते हुये कहा कि (तस्यै) ऐसी (विश्पत्न्यै सिनीवाल्यै) सन्तानों को पालने वाली अन्नपूर्णा नारी के लिये (हविः जुहोतन) उत्तम पदार्थ प्रदान करो, अर्थात् इनका आदर किया जावे एवं उत्तम-उत्तम वस्तुयें देकर इन्हें प्रसन्न किया जाये। स्पष्ट है कि सन्तान को बनाने वाली योग्य गृहपत्नी को जितना प्रसन्न रक्खा जायेगा, परिवार के हित में वह अति मङ्गलमय होगा। इसलिये मनु महाराज ने भी कहा—

पितृभिर्भ्रातृभिश्चैता पतिभिर्देवरैस्तथा।
पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः॥

मनु० ३।५५॥

अर्थात् परिवार के श्वसुर, पति, देवर आदि प्रत्येक सदस्यों से गृहपत्नी को सम्मान व प्रेम प्राप्त होना चाहिये। उसे यथोचित वस्त्र एवं आभूषण भी समय-समय पर देकर गृह में कल्याण चाहने वाले व्यक्ति को पूजित करना चाहिये। इस सूक्त का अन्तिम मन्त्र इस प्रकार है—

या विश्पत्नीन्द्रमसि प्रतीची सहस्रस्तुकाभियन्ती देवी।
विष्णोः पत्नि तुभ्यं राता हवींषि पतिं देवि राधसे चोदयस्व॥

इस मन्त्र में उस अन्नपूर्णा नारी को (विश्पत्नी) सन्तानों का पालन करने वाली (प्रतीची) निश्चित ज्ञान वाली (सहस्रस्तुका)

---

१. ये शारीरिक लक्षण मनुष्य के श्रेष्ठ गुणों के प्रतीक हैं। अच्छी लम्बी पतली उँगलियों वाली नारी को वाद्य, चित्रकला आदि गुणों में निपुण होना चाहिये॥

हजारों लोग जिसकी स्तुति करें (**अभियन्ती**) चारों ओर के कर्म करने वाले (**विष्णोः पत्नी**) वीर पुरुष की पत्नी आदि शब्दों से सुभूषित करते हुये कहा कि (**देवि**) हे देवि ! (**पतिम्**) अपने पति को (**राधसे**) संपत्ति के लिये (**चोदयस्व**) = आगे बढ़ा ।

इस मन्त्र में नारी संतान के पालन एवं अन्य गृह कार्यों के साथ-साथ अपने पति के जीविकोपार्जन में भी सहायक बने, ऐसी कामना की गई है । स्पष्ट है कि योग्य नारी गृह को ही नहीं बनाती किन्तु अपने कुशल व्यवहार से पति की प्रेरणा-प्रदात्री, हृदय विजेत्री बनती हुई गृह के आर्थिक ढाँचे को भी ठीक रखती है । अर्थ का अभाव सचमुच ही घर के लिये एक बड़ा अभिशाप है, जिसके अभाव में सन्तानों की शिक्षा, शारीरिक दृढ़ता एवं नैतिक उत्थान कुछ भी सम्भव नहीं । इस दरिद्रता रूपी अभिशाप को नारियाँ अपने पतियों को उत्तम व्यवहारों से प्रसन्न रखती हुई संयमित जीवन एवं पुरुषार्थी बनने की प्रेरणा देकर दूर कर सकती हैं । जिस घर में पुरुषों की गाढ़ी कमाई के पैसे स्त्रियाँ विलासिता के साधन बटोरने में ही खर्च करा देती हैं, वह घर कालान्तर में तबाह और बरबाद हो जाता है अतः वेद ने शिक्षा दी कि वे अत्यन्त संयमित एवं सूझबूझ वाली बनें तभी वह सिनीवाली = अन्नपूर्णा कहला सकेंगी ।

४७ वें कुहू देवता वाले सूक्त के प्रथम एवं द्वितीय मन्त्रों में भी पूर्ववत् यही बात प्रकारान्तर से दुहरायी गई है कि नारी "**शतदायमुक्थ्यम्**" = उत्तम ऐश्वर्य सम्पन्न सन्तान प्रदान करे एवं स्वयं मितव्ययी बन कर घर में अर्थ-व्यवस्था को ठीक रक्खे । मन्त्र इस प्रकार है—

कुहूं देवीं सुकृतं विद्मनापसमस्मिन् यज्ञे सुहवा जोहवीमि ।
सा नो रयिं विश्ववारं नि यच्छाद् ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम् ।।

अर्थात् (**सुकृतम्**) अच्छे कर्म करने वाली (**विद्मनापसम्**) कर्त्तव्यों को जानने वाली (**देवीं कुहूम्**) अद्भुत स्वभाव वाली

दिव्यगुण वाली स्त्री को बुलाता हूँ। वह हमें (**रयिम्**) उत्तम धन एवं प्रशंसनीय वीर सन्तान प्रदान करे। इस प्रकार द्वितीय "कुहूर्देवानाममृतस्य पत्नी" मन्त्र में भी कुहू कहलाने वाली महिला उत्तम धन से हमें पुष्ट करे, यही कहा गया।

राका देवता वाले ४८ वें सूक्त में पुनः स्त्रियों के कर्त्तव्यों का उपदेश देते हुए कहा गया कि—

राकामहं सुहवा सुष्टुती हुवे शृणोतु नः सुभगा बोधतु त्मना।
सीव्यत्वपः सूच्याच्छिद्यमानया ददातु वीरं शतदायमुक्थ्यम्॥

अर्थात् गृहस्थ पुरुष कहता है कि मैं (**राकाम्**) पौर्णमासी के समान शोभायमान पत्नी को (**सुष्टुती**) बहुत स्तुति से (**सुहवाहुवे**) बुलाता हूँ। वह (**सूच्या**) कभी न टूटने वाली सूई से जिस प्रकार सुन्दर वस्त्र सिले जाते हैं वैसे ही (**अपः**) कर्म [गृहस्थ कर्मों को] श्रेष्ठ बनावे एवं प्रशंसनीय ऐश्वर्य सम्पन्न वीर पुत्र (**ददातु**) देवे। यहाँ "**अच्छिद्यमानया सूच्या**" कहना गृहस्थ जीवन के कर्त्तव्यों को दृढ़ करने की दृष्टि से बहुत ही भला है। राका = पूर्णिमा का चाँद (**आह्लाददायक**) है उससे श्रेष्ठ कर्त्तव्यों एवं सुसन्तान के निर्माण की आशा की जानी कितनी स्पृहणीय है। इसी प्रकार इस सूक्त के द्वितीय मन्त्र "**यास्ते राके सुमतयः सुपेशसो**............" में भी राका = सुखदायिनी नारी को सम्बोधित करते हुए कहा कि 'तेरी सुमतयः = सम्मतियाँ सुपेशसः = बहुत सुवर्ण वाली हैं। हे सौभाग्यवति तू मुझ पति को अनेकों ऐश्वर्य देने वाली है। तू प्रसन्न मन वाली होकर मेरे समीप आ।' इस मन्त्र में प्रत्येक राका बनने की इच्छा वाली नारी से यह अपेक्षा है कि वह सदैव प्रसन्न मन वाली है। उस गृहदेवी के प्रसन्न रहने से घर का कोना-कोना खुशियों से भर उठेगा। बच्चे किलोल करेंगे स्वर्ग सा वातावरण होगा। यह निश्चित है कि घर में प्रसन्न मनवाली नारी को देखकर पुरुष अपनी

सारी बाहर रहकर जीविकोपार्जनादि की थकान एवं ग्लानि को एक क्षण में विस्मृत कर देता है। अत एव प्रत्येक गृहदेवी को प्रसन्न रहने का स्वभाव अवश्य ही बनाना चाहिये।

"देवपत्नी" देवता वाले ४९ वें सूक्त में देवों की या राजा की पत्नी को कैसा होना चाहिए यह संक्षेप में बताया गया है। इस सूक्त के दोनों मन्त्रों से प्रकट किया गया है कि स्त्रियाँ बड़े-बड़े संग्राम जीतने में भी हर प्रकार से राष्ट्र को सहयोग प्रदान करें। राष्ट्र को बलवान् एवं सशक्त बनावें। "ता नो देवीः सुहवाः शर्म यच्छन्तु" वह देवी हमें शर्म=गृह अथवा सुख हर प्रकार से देवे कहा है। इस सूक्त के द्वितीय अन्तिम मन्त्र में तो देवपत्नी के लिए अनेकों इन्द्राणी (ऐश्वर्य वाले पुरुष की पत्नी) अग्नायी (अग्नि सदृश तेजस्वी पुरुष की पत्नी) अश्विनी (शीघ्र कर्म करने वाले पुरुष की पत्नी) रोदसी (न्यायोचित कार्य करने वाले पुरुष की पत्नी) वरुणानी (श्रेष्ठ पुरुष की पत्नी) शब्द आये हैं। स्पष्ट है कि इन्द्राणी आदि कहलाने वाली श्रेष्ठ वीर पुरुषों की पत्नियाँ भी अपने पतियों के सदृश परोपकारप्रिया तेजस्विनी न्याय सभा की अध्यक्षता तथा युद्ध क्षेत्र में भी सहायिका एवं परामर्शदात्री होवें ऐसी अपेक्षा वेद में देवपत्नियों=विद्वानों एवं राजा की पत्नियों से की गई है।

इस कसौटी में जब हम अपने गौरवमय प्राचीन इतिहास को कसते हैं तो कैकेयी, मालिनी, देवल, देवी संयोगिता जैसी अनेकों श्रेष्ठ राजाओं की योग्य पत्नियों की ओर उँगली उठ जाती है। कैकेयी युद्ध विद्या के मर्म को जानती थी तभी तो युद्धकाल में उसे साथ लेकर राजा दशरथ गये थे एवं उसने भी गाढ़े समय में रथ का पहिया टूट जाने पर उसे तत्काल ठीक कर दिया था। पृथ्वीराज चौहान युद्ध की मार्मिक बातों पर योग्य मन्त्रियों के होते हुये भी संयोगिता से ही परामर्श करता था इसे सारा इतिहास बताता है।

इसी प्रकार विद्वानों की पत्नियाँ भी सीता, कुन्ती, द्रौपदी, दमयन्ती, गान्धारी तथा मैत्रेयी सम ब्रह्मवादिनी महिलायें हैं जो सांसारिक वैभवों को तृणसमान तुच्छ समझती रही हैं। वास्तव में ये ही "देवपत्नी राका, कुहू, एवं सिनीवाली" कहलाने के योग्य थीं।

परमात्मा करे हमारा देश पुनः नारी जाति के उत्थान एवं सम्मान के महत्व को समझे तथा विवाह के समय ये दहेज के लोभी "कन्यारत्नं दुष्कुलादपि" अर्थात् कन्यारत्न को दुष्कुल से भी ले लेना चाहिये इस मनु महाराज के वचन का पालन करते हुए अपने घर में सुलक्षणा, योग्य संस्कृत प्रिया गृहदेवी को लावें जिससे "सिनीवाली राका, कुहू, देवपत्नी" वाले वेद के ये स्वप्न घर-घर में साकार हो सकें।

—: ० :—

रत्नगर्भा

यजुर्वेद का सम्पूर्ण अष्टमाध्याय गृहस्थ धर्म के उच्च व्यवहारों एवं आदर्शों से भरा हुआ है। याज्ञिकों ने एवं अन्य भाष्यकारों ने इस अध्याय के मन्त्रों का कुछ भी अर्थ किया हो किन्तु ऋषि दयानन्द तो इन मन्त्रों का एक सर्वग्राह्य एवं सर्वमान्य व्यावहारिक पक्ष ही उपस्थित करते हैं। प्रकरणानुसार इस अध्याय के पञ्चम मन्त्र को देखें :—

विवस्वन्नादित्यैष ते सोमपीथस्तस्मिन् मत्स्व।
श्रदस्मै नरो वचसे दधातन यदाशीर्दा दम्पती वाममश्नुतः।
पुमान् पुत्रो जायते विन्दते वस्वधा विश्वाहारप एधते गृहे॥
(यजु० ८।५)

इस मन्त्र का भावार्थ है—

विवस्वन् आदित्य—हे सूर्य के समान तेजस्वी गृहस्थजन एष ते सोमपीथः—यह तुम्हारा सोमपान करने योग्य स्वच्छ प्रभुभक्त घर है। तस्मिन्—उसमें सदैव मत्स्व—प्रसन्न रहो। नरः अस्मै वचसे—इस गृहस्थाश्रम में वाणी का व्यवहार करने के लिए श्रत् दधातन—सत्य को ही धारण करो। इस प्रकार यत् गृहे—जिस गृहस्थाश्रम में दम्पती—पति-पत्नी वामम्—सुन्दरता से धर्म को अश्नुतः—प्राप्त होते हैं उसमें आशीर्दा—इच्छाओं को पूर्ण करने वाला अरपः—निष्पाप धार्मिक पुमान्—पुरुषार्थी पुत्रः—पुत्र जायते—उत्पन्न होता है जो कि उत्तम वसु विन्दते—धन प्राप्त करता है, अध—तथा वह एधते—खूब धन ऐश्वर्य से बढ़ता है।

इस मन्त्र में कामना पूर्ण करने वाले निष्पाप तथा पुरुषार्थी जो सदा उत्तम धन एवं ऐश्वर्यों को प्राप्त करेगा ऐसे पुत्र की प्राप्ति की बात कही है। ऐसा दिव्य पुत्र किस गृहस्थ को प्राप्त हो सकेगा? इसके लिए मन्त्र में दो विशेष बातें कही हैं—

(१) प्रथम परिवार सोमपीथः हो अर्थात् वहाँ सोमलता आदि ओषधियों के रस का पान याज्ञिक विधि से किया जाता हो, अथवा सोम परमात्मा को कहते हैं सो जहाँ ब्रह्मानन्द रूपी रस का पान नित्य किया जाता हो; यानी दम्पती पूर्ण ईश्वर भक्त= आस्तिक हों।

(२) दूसरी बात है परिवार में दम्पती=पति-पत्नी दोनों ही सत्य का व्यवहार करने वाले हों, परस्पर में किसी के मन में दुराव-छिपाव अथवा छल-कपट न हो। सम्पूर्ण व्यवहारों में वे सत्यनिष्ठ हों। वस्तुतः गृहस्थ जीवन में परस्पर असत्य भाषण करना एक प्रकार से दूध में खटाई डालना है। इस दुर्गुण के बड़े भयंकर परिणाम परिवारों में देखे गये हैं। असत्य से अविश्वास का जन्म होता है और परिवार नरक बन जाते हैं। बच्चे इस असत्य भाषण को माता-पिता से सीख कर अवज्ञाकारी बन जाते हैं।

मन्त्र में उल्लिखित पूर्वोक्त प्रकार के शुभ गुण सम्पन्न पुत्र की प्राप्ति के लिए ये दो ही विशेष बातें बताई गई है।

आज इस युग में प्रत्येक गृहस्थ प्रायः सन्तान के दुःख से दुःखी है। चार पुत्रों में से प्रथम पागल है, दूसरा घर की सम्पत्ति को बेच-बेच कर खा जाता है तो तीसरा घर से बार बार भाग जाता है और चौथा अस्वस्थ रोगी है यही सब कुछ आज सुनने को प्रत्येक गृहस्थ परिवारों से मिल रहा है। यह सब क्या है? एवं क्यों हो रहा है? कहाँ राम जैसी आज्ञाकारी सन्तान! भीम जैसे बलवान् पुत्र!! और कहाँ ये नालायक!!! वस्तुतः इन सबका कारण गृहस्थ जीवन का असन्तुलित व्यवहार ही है। आजकल के गृहस्थ परिवारों में सच्ची ईश्वर भक्ति एवं धार्मिकता का अभाव होता जा रहा है। न वहाँ जड़पूजा है, न निराकार सच्चे ईश्वर की पूजा। केवल भौतिकता एवं भोगवाद है।

सन्तान को योग्य एवं सुशिक्षित बनाना गृहस्थ जीवन का सबसे बड़ा तप एवं कर्त्तव्य है। ऋग्वेद ५।७१।७ वें मन्त्र का भावार्थ करते हुए ऋषि दयानन्द लिखते हैं—'पुत्रों के लिये विद्या वा उत्तम शिक्षा करने के समान कोई बड़ा उपकार नहीं है'। यहाँ सन्तानों को सुशिक्षित करने से बढ़कर कोई बड़ा उपकार महर्षि ने नहीं माना है। शोक है कि कुछ आर्य जन आज कुपथ का अनुसरण करके सबसे बड़े इस श्रेष्ठ कर्त्तव्य से विमुख हो रहे हैं। अपनी सन्तान को धड़ाधड़ कॉन्वेन्ट स्कूलों में भेजा जा रहा है, जहाँ प्रारम्भ से ही उन्हें अंग्रेजी भक्त एवं धर्म-विमुख बनाने का कार्य तेजी के साथ किया जाता है। स्कूलों में तो इस प्रकार के राष्ट्र विरोधी विष का पान ये बच्चे करते ही हैं, किन्तु घर पर भी माता-पिता के द्वारा इन्हें विरासत में कुसंस्कार ही प्राप्त होते हैं।

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतं पिता।
सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते॥ मनु० २।१४५॥

नारी के लिये मातृपद से महनीय कोई पद नहीं है। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक नारी में मातृत्व की सौम्यता शीलता के दर्शन की परिपाटी है किन्तु मुझे आश्चर्य होता है महाभारत काल के पश्चात् के साहित्य ग्रन्थों को देखकर, जिनमें स्त्री के कटाक्ष, नयन-बाण उरोज एवं नख-शिख वर्णन आदि की भरमार है। सच तो यह है कि वहाँ मातृ-रूप की परिकल्पना में भी शृङ्गार रस को ही जोड़ने का प्रयास किया गया है। इस विषय में माता पार्वती आदि के वर्णन साहित्य ग्रन्थों में विशेष रूप से देखे जा सकते हैं। ऐसी अवस्था में नारियाँ यह भूल गईं कि उनका स्वरूप क्या है। वे समझ बैठीं कि नारीत्व की सफलता मात्र विलासिता है।

जिस समय इस देश में वैदिक मर्यादाओं का श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा आचरण होता रहा, उस समय लोग इस तत्त्व को यथार्थतः जानते

थे कि गृहस्थाश्रम की वास्तविक सफलता योग्य सन्तान की प्राप्ति में है, और सन्तान की उस सुशिक्षा में माता का प्रमुख स्थान है। इतना ही नहीं एक पीढ़ी को उत्तम बनाने के लिये इससे पूर्व की तीन पीढ़ी का उत्तम होना आवश्यक हैं। यजुर्वेद २३।१८ में कहा—अम्बे अम्बिके अम्बालिके न मा०.........' अर्थात् अम्बा= माता, अम्बिका=दादी अम्बालिका=परदादी अथवा अम्बा= माता अम्बिका=नानी, अम्बालिका=परनानी सन्तानों को अच्छी शिक्षा दें। स्पष्ट है कि सन्तान के योग्य बनाने में केवल माता ही नहीं बल्कि दादी, परदादी आदि वृद्धा मातायें जिनके सम्पर्क में बच्चा आता है सबको योग्य सुसंस्कृत भाषा बोलने वाली होना चाहिए। इसी प्रकार "शिवा भवन्तु मातरः" (अथर्व० १९।४०।३) का भी यही अर्थ है कि माता, पितामही, प्रपितामही आदि सन्तानों को योग्य बुद्धिमान्-बनावें उनके तप को नष्ट न करें।

प्रायः परिवारों में ऐसा देखा जाता है कि माता के समझदार एवं धार्मिक सुशिक्षित होने पर भी दादी एवं नानियाँ अपठित होने के कारण अपने कुसंस्कारों से बच्चे को लाड़-लाड़ में दूषित एवं कुसंस्कृत बना देती हैं, माता की चलने ही नहीं देतीं। यह स्थिति बच्चे के हित में बड़ी दुःखद है ऐसा नहीं होना चाहिये। घर में वृद्धा माताओं को चाहिये कि वे हर बात में पौत्र एवं पुत्रवधू के बीच में दखल न देकर व्यर्थ लाड़-प्यार न करें। इससे सन्तान का भविष्य नष्ट होता है।

यहाँ वेद के उपर्युक्त उदाहरण से अच्छी प्रकार स्पष्ट हो गया कि सन्तान को बनाने एवं बिगाड़ने दोनों में ही नारी का कितना प्रमुख हाथ है। इस मातृपद की गरिमा इसी बात में है कि वह पृथ्वी के समान क्षमाशीला गम्भीर तथा नाना प्रकार की विद्याओं से सुशोभित हो। नारी सम्पूर्ण परिवार के लिये पूषा—(यजु० ३८।३) पुष्टि प्रदान करने वाली एवं अपनी प्रिय सन्तान के लिये सुषदा=

(यजु० १०।२६) जिसकी गोद में प्रेम से बैठा जा सके, ऐसी है। अपने इन दैवी गुणों तथा अलौकिक वैदुष्य के कारण उसने इतने नरपुङ्गवों का सृजन किया है कि जिन्हें देखकर सारा विश्व चकित है। प्रकृत मन्त्र यजु० ८।५ के अनुसार धार्मिक एवं सत्यनिष्ठ परिवार बनाने पर, आज भी कोई आश्चर्य नहीं कि वह सहस्रों नर-रत्न उत्पन्न कर सकती है, क्योंकि वह वीरसूः, जीवसूः एवं रत्नगर्भा है॥

—०—

बिन दरवाजे का मकान

क्या आपने ऐसा मकान देखा है जो चारों ओर से बन्द हो जिसमें कोई दरवाजा न हो ? यदि नहीं तो आइये मेरे साथ—

ये समाज जिसमें हम सब रहते हैं, एक भवन है। भवन का निर्माण बड़ी कारीगरी के साथ पर्याप्त खिड़कियाँ, रोशनदान एवं दरवाजे जिनसे शुद्ध वायु घर में प्रवेश कर सके किया जाता है। ये दरवाजे ही प्रवेश द्वार हैं। भवन का सम्पूर्ण आकर्षण एवं शोभा इन्हीं पर केन्द्रित होती है तभी तो इन्हें सबसे अधिक सजाया जाता है, और सजाकर इनके दोनों ओर मंगल के प्रतीक कलश स्थापित किए जाते हैं। बन्दनवार बान्धे जाते हैं तब कहीं "ब्रह्मन् प्रविशामि इति" कह कर गृह में प्रवेश किया जाता है। आह ! क्या ही इस घर की शोभा है, सुखद उत्तम वायु द्वारों से आ रही है। सब प्रसन्न हैं। बड़ा महत्व है, इन द्वारों का किन्तु समाजरूपी इस भवन के द्वार कौन हैं ये वेद के शब्दों में देखें—

देवीर्द्वारो वि श्रयध्वम् सुप्रायणा न ऊतये।
प्रप्र यज्ञं पृणीतन ॥ ऋ० ५।५।५ ॥

अर्थात्—हे मनुष्यो ! तुम (सुप्रायणाः) भली प्रकार गृहों में प्रवेश करो, एवं (द्वारः) द्वारों के समान सुख देने वाली उत्तम (देवीः) दिव्य नारियों का (नः ऊतये) हम सबकी [समाज की] रक्षा के लिए (विश्रयध्वम्) विशेष रूप से आश्रयण करो तथा (यज्ञम्) गृहस्थाश्रम-रूपी यज्ञ को (प्र प्र पृणीतन) पुष्ट करो। इस मन्त्र में नारी जाति को सुख के द्वार की संज्ञा दी है। समाज अथवा परिवाररूपी भवन की नारियाँ द्वार हैं। किसी भवन में जो दरवाजे का महत्त्व है, वही महत्त्व एवं स्थान समाज अथवा परिवार में स्त्री-जाति का है, यह प्रकृत मन्त्र से स्पष्ट हो गया। ठीक यही बात ऋग्वेद २।३।५ में भी कही है। मन्त्र है—

विश्रयन्तामुर्विया हूयमाना द्वारो देवीः सुप्रायणा नमोभिः।
व्यचस्वतीर्विप्रथन्तामजुर्या वर्णं पुनाना यशसं सुवीरम् ॥

तात्पर्य यह है कि हे मनुष्यो ! (नमोभिः उर्विया) अन्नादि से युक्त एवं पृथिवी के साथ वर्तमान (हूयमानाः) ग्रहण की हुई (सुप्रायणाः) अच्छी चाल वाली (अजुर्याः) रोग-रहित (सुवीरम्) उत्तम वीरों से युक्त (यशसम्) अपने यश को (पुनानाः) पवित्र करती हुई (व्यचस्वतीः) समस्त गुणों से व्यापक एवं (द्वारः देवीः) शोभा युक्त द्वारों के समान स्त्रियों का (विश्रयन्ताम्) विशेषरूप से आश्रयण करो एवं उनके साथ शास्त्र सुख का (विप्रथन्ताम्) विशेष रूप से विस्तार करो।

इस मन्त्र में नारी को केवल सुखकारक द्वार ही नहीं बताया बल्कि यशस्विनी नारियों के साथ शास्त्र-चर्चा की जानी चाहिये यह भी कहा ! प्रायः पुरुष गृहस्थ परिवारों में स्त्री को फैशन की गुड़िया के रूप में ही देखना चाहते हैं। बाह्यरूप-पिपासा पुरुष की इतनी क्षुद्रता पर आज उतर चुकी है कि स्त्री के आन्तरिक सौन्दर्य का उनके सामने कोई मूल्यांकन ही नहीं रह गया। ऐसे लोग गृहस्थ जीवन में शास्त्र-चर्चा के सुख को क्या जान सकते हैं। आज की स्थिति को देखते हुये कहना पड़ता है, कि भगवान् न करे किसी अफसर की पत्नी होने का संयोग किसी स्त्री को प्राप्त हो। अधिकांशतः ऐसी नारियों के जीवन में कर्मशून्यता व्याप्त है, बस चारों ओर फैशन है। नौकर ही उन्हें उठाते हैं, नौकर ही बिठाते हैं, वे किस लिये हैं, बस मत पूछें।

नारी की द्वार से बढ़कर और मांगलिक संज्ञा क्या हो सकती है? मेरी समझ में तो अब तक नहीं आया। पता चलता है कि द्वार बनने के लिये नारी को अपनी कितनी तैयारी करनी अभीष्ट है। कहीं ऐसा तो न हो कि विद्या एवं पाण्डित्य के अभाव में वह घर का द्वार

तो नहीं, घर का कूड़ा कर्कट बन के न रह जाए। अतः वेद की शिक्षा नारियों को व्यापक रूप से प्राप्त करनी चाहिए। जब से पक्षपाती मूढ़मति लोगों ने वेद की शिक्षा का अधिकार नारियों से छीन लिया तब से बेचारी स्त्री जाति का सर्वत्र अनादर होने लगा। आज भी बहुत लोग इस रोग से ग्रस्त हैं। स्त्री शिक्षा का समर्थन करते तो हैं पर केवल मुख से। उनके घर में उसी प्रकार दुःख-दर्द से बिलखती हुई देवियां पड़ी हैं जिन्हें कोई पूछने वाला ही नहीं। मनु महाराज के "पूज्या भूषयितव्याश्च बहुकल्याणमीप्सुभिः" का उनके लिये कोई अर्थ ही नहीं।

१९७५ में महिला वर्ष के नाम से बड़ी चहल-पहल थी। महिलाओं को जागरूक बनाने के लिए बहुत से प्रयत्न, पुरुषार्थ किये गये जिनमें बहुत से ठीक भी थे, परन्तु सम्भवतः इस प्रकार के भाइयों ने महिला वर्ष से यह अपेक्षा की थी कि यह वर्ष नारी सुधार वर्ष हैं अतः इस वर्ष से नारियों को पति की अति आज्ञाकारिणी सौम्य सती सीता बन जाना चाहिये, पर राम बनना वे भूल गये। इसलिये मैं कहती हूँ कि वे घर जहाँ सेविकाओं के समान नारियों की इज्जत है एवं वे दुःखी सन्तप्त रहती हैं ऐसे सब गृहस्थ परिवार अथवा समाज "बिन दरवाजे के मकान" हैं।

—:०:—

कोशिका

गृहस्थ जीवन में धन का अतिशय महत्त्व है, क्योंकि यह ब्रह्मचर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास सभी आश्रमों का पोषक[1] है। इस आश्रम में पति यदि उत्पादक है तो पत्नी उत्पादित कोश की रक्षिका = कोशिका है। कोशागार की भली-भाँति रक्षा न होने पर उत्पादित वैभव लुट जायेगा, नष्ट-भ्रष्ट हो जायेगा अतः सच्चा ईमानदार बुद्धिमान् कोश का रक्षक चाहिये। गृह में यह उच्च किन्तु उत्तरदायित्वपूर्ण पद पत्नी को दिया गया है। ऋग्वेद १०।८५।२६ में 'गृहान् गच्छ गृहपत्नी यथासो वशिनी त्वं विदथमा वदासि' कहकर पत्नी को गृहपत्नी घर की मालकिन एवं 'वशिनीं'—अपने अधिकार पूर्ण शब्दों द्वारा घर के सभी भृत्य बन्धु आदि जनों को वश में करने वाली, शब्दों से सम्बोधित किया गया है।

पत्नी कोशिका–गृहरूपी खजाने की मालकिन है यह बात विवाह संस्कार के समय सप्तपदी विधि से पूर्व जब वर-वधू के उपवस्त्र में गाँठ बाँधते समय लौकिक रीत्यनुसार वधू के वस्त्र के साथ कुछ चावल एवं पैसे रखे जाते हैं, तब जो गाँठ बांधी जाती है इससे भी सुपुष्ट होती है। अर्थात् चावल एवं पैसे रखने की प्रतीकात्मक विधि ये प्रदर्शित करने के लिए की जाती है कि अब से यह वधू पति के कोष की मालकिन होगी। ऋग्वेद ७।५६।५ में कहा है—

सा विट् सुवीरा मरुद्भिरस्तु सनात्सहन्ती पुष्यन्ती नृम्णम् ॥

अर्थ है—(सा) वह (विट्) प्रजा एवं (सुवीरा) अच्छे वीर पुत्रों वाली माता (मरुद्भिः) मनुष्यों के साथ (सनात्) अच्छे व्यवहारों में (सहन्ती) पीड़ा को सहने वाली अर्थात् धैर्यवती सहनशीला

---

१. यथा नदीनदाः सर्वे सागरे यान्ति संस्थितिम्।
तथैवाश्रमिणः सर्वे गृहस्थे यान्ति संस्थितिम् ॥ मनु० ६।९० ॥

हो एवं (नृम्णम्) धन को (पुष्यन्ती) पुष्ट करने वाली हो, वह हमारे लिये (अस्तु) होवे। इस मन्त्र में तीन बातें मुख्य रूप से कही हैं—

१—स्त्री श्रेष्ठ पुत्रों को जन्म देने वाली हो।

२—आपत्तियों एवं दुःखों को सहन करने वाली हो।

३—धन को सुपुष्ट करने वाली अर्थात् 'रक्षिका=कोशिका' हो।

कोई भी स्त्री विदुषी श्रेष्ठ माता बनकर ही शूरवीर पुत्रों को जन्म देने वाली बन सकती है, अतः स्त्रियों को वेदविद्या का भली प्रकार अध्ययन करना चाहिये, यह यहाँ तात्पर्य है।

किसी भी परिवार की उत्तम अवस्थिति धैर्यावलम्बन पर विशेष निर्भर होती है। प्रायः स्त्री के लिये अपना अपमान सहन करना अति दुष्कर कार्य है, किन्तु परिवार तो तितिक्षा का सबसे बड़ा उदाहरण है, यहां तो मान अपमान पर बिल्कुल ध्यान न देते हुये कर्त्तव्य बुद्धि को ही प्रमुख कई बार बनाना पड़ता है। सगे मित्र-सम्बन्धी पता नहीं कब किसके द्वारा किस प्रकार की बातें आ जायें और उन्हें निर्विकार होकर टाल देना पड़े, कहा नहीं जा सकता। दूसरी बात अभाव-ग्रस्तता बहुत बड़े दुःखों का मूल है। परिवार में किन्हीं चीजों का अभाव हुआ तो चिड़चिड़ाहट आनी भी स्वभाविक हो जाती है। मैं कह सकती हूँ कि ऐसी दुविधा-ग्रस्त अवस्थाओं में नारी प्रायः अपने ईश्वर-प्रदत्त धैर्य गुण के कारण उत्तीर्ण हो जाती है, किन्तु पुरुष असमंजस की स्थिति में रहता है। अभावग्रस्तता के कारण परिवार में दैन्य एवं दुःख का वातावरण उपस्थित न होने पाये, इसमें स्त्री की भूमिका निःसन्देह प्रशंसनीय रहती है। तिनकों से अपने गृहरूपी घोंसले को सजाकर बच्चों को सीधे-सादे भोजन एवं वस्त्रों को अपनी कला से अत्यन्त सुरुचिपूर्ण बनाती हुई वह अभावग्रस्तता में भी खुशियों के संसार भर देती है।

किसी दूसरे को तो क्या परिवार के बच्चों तक को भी यह बोध नहीं हो पाता कि हमारे यहाँ आर्थिक कोई कमी भी है।

वे स्त्रियाँ बड़ी फूहड़ एवं अकुलीन कही जा सकती हैं जो अपने घर की आय-व्यय की कमी की चर्चाएँ पास-पड़ोस में इधर-उधर किया करती है। बात-बात में अमुक वस्तु नहीं है, पैसे नहीं है, ऐसा कहकर बड़ा ही दीनतापूर्ण वातावरण परिवार में बनाकर रखती हैं। वस्तुतः ऐसी बातों के लिये नारियों को उनका अधिकार न सौंपा जाना ही कारण है। उनका अधिकार उन्हें सौंप दिया जाये तो वे उससे ही कार्य चला लेने की विधि शान्ति से निकाल लेंगी। यह असहयोग आन्दोलन तभी प्रारम्भ होता है जब वे सोचती हैं कि घर की मालकिन के अनुरूप मुझे कोई अधिकार नहीं।

संकटग्रस्त अवस्थाओं से पार हो जाने की क्षमता भगवान् ने नारी को प्रदान की है, अतः उसे धन की रक्षिका वेद में ठीक ही कहा गया है। यदि स्त्री के हाथ में उत्पादन का कोश होगा तो परिवार में वितरण भी समुचित होगा। घर की बागडोर नारी के हाथ में होने से किसको क्या कब कैसी आवश्यकता है इसका बोध उसे ही भली प्रकार हो सकता है।

मुझे बहुत दुःख होता है ऐसे परिवारों को देखकर जिनमें स्त्रियाँ प्रायः रुपये दो रुपये के लिये भी तरसती रहती हैं। एसे घरों में उत्पादन एवं वितरण दोनों पर ही पुरुष का नियन्त्रण होता है। वेतन मिला उसको अपने ही पास रखकर पुरुष ने अपने ऐशो आराम में मित्रों आदि के साथ (दुर्व्यसनों में भी) चाहे जितना खर्च कर दिया, कोई पूछने वाला नहीं जो कुछ इनके ऐशो-आराम से बचा-खुचा उसमें ही परिवार का यथाकथञ्चित् पोषण कर दिया। यदि गृहदेवी ने कोई अन्य आवश्यकता की वस्तुएँ बता दीं तो उन्हें 'डाँट पिला दी।' स्पष्ट है कि सुखी परिवार के लिये लम्बे वेतन-

मान की ही आवश्यकता नहीं है सुनियन्त्रण की भी परम आवश्यकता हैं। जिस देवी का कोशागार पर अधिकार नहीं, वह किस प्रकार व्यय पर सुनियन्त्रण करते हुये पुरुष को मद्य-पानादि दुर्व्यसनों से बचा सकती है। आज मद्य-पान की समस्या सरकार के लिये भी सिरदर्द बनी हुई है। कितनी ही स्त्रियाँ इस दुर्व्यसन में फँसे हुये पतियों के कारण फटे-चीथड़े पहने हुये आधा पेट भोजन करते हुये दिन-रात रोती गिड़गिड़ाती हुई मार-पीट भी सहन करती हैं। इन सबका उत्तरदायित्व किस पर हैं ? वस्तुतः इस जटिल एवं करुण समस्या का उपचार सद्गृहस्थ बनते हुये आय-व्यय के संरक्षण का भार नारी को थमा देने में प्राप्त हो जाता है।

आय-व्यय की संरक्षिका नारी ही हो सकती है। इस बात की सुपुष्टि मनु महाराज की 'व्यये च अमुक्तहस्तया' मनु० ५।१५० अर्थात् अच्छी नारी को व्यय के कार्यों में मुक्तहस्त वाली उड़ाऊ नहीं होना चाहिये, इस सूक्ति से भी होती है। इस प्रकार नारी को 'कोशिका' बना देने में परिवार का कल्याण ही कल्याण है।

पुरुष केवल योग अर्जन कर सकता है स्त्री क्षेमदा है वही देगी तो पुरुष पावेगा।

—:०:—

नारी का कुलाय

कुलाय कहते हैं घर को। यजुर्वेद १४।२ में नारी को कुलायिनी–प्रशंसित घर वाली कहा है। मन्त्र इस प्रकार हैं—

कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म
पीपिहि सौभगायाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा॥

भावार्थ है–हे स्योने! सुखप्रदे नारी (त्वा) तेरी (वसवः रुद्राः) विद्वान् लोग (अभिगृणन्तु) प्रशंसा करें। तू (सौभगाय पीपिहि) सौभाग्य को अच्छी प्रकार प्राप्त कर। तू (घृतवती) तेज वाली एवं (पुरन्धिः) बहुत शुभ गुण वाली तथा (कुलायिनी) अच्छे कुल वाली—कुलीन होती हुई (पृथिव्याः सदने) इस पृथ्वी पर बने हुये अपने घर में (सीद) बैठ। सभी अध्यापक एवं उपदेशक तुझे यहाँ गृहस्थाश्रम में बिठाते हैं।

इस मन्त्र में कुलायिनी, घृतवती, पुरन्धिः शब्द नारी जाति के लिये आये हुये हैं जो कि ध्यान देने योग्य हैं। कुलाय शब्द से प्रशंसा अर्थ में "अत[1] इनिठनौ"से इनि प्रत्यय हुआ है, सो कुलायिनी का अर्थ हुआ प्रशंसित कुल वाली। घृत का अर्थ तेज है, सो घृतवती-तेजस्वरूपा नारी को कहेंगे। पुरन्धिः का अर्थ बहुत सुखों को धारण करने वाली अथवा'पुरम् गृहम् दधाति इति पुरन्धिः' अर्थात् घर को धारण करने वाली—बनाने वाली हुआ। इस प्रकार ये तीनों शब्द नारी की अपनी मर्यादाओं एवं स्वरूप का बोध करा रहे हैं। नारी की सबसे

१—मतुबर्थ में प्रत्यय निम्न अर्थों में होते हैं—

भूमनिन्दाप्रशंसासु नित्ययोगेऽतिशायने।
संसर्गेऽस्तिविवक्षायां भवन्ति मतुबादयः॥

(द्र० काशिका ५।२।९४)

पहली अपने कार्यक्षेत्र की मर्यादाएँ एवं कर्त्तव्य उसका अपना घर है पश्चात् कुछ और। अपने इस कुलाय—नीड को उसे हर सम्भव प्रयत्न से प्रशंसित सुखदायक बनाना है, इस गृहरूपी उद्यान में ऐसे सुन्दर फूल खिलाने हैं जिनकी महक बड़ी दूर-दूर तक पहुँचे, यही उसकी चरम सफलता है। प्रकृत मन्त्र का भावार्थ ऋषि दयानन्द के अनमोल शब्दों में ही देखें।

"स्त्रियों को योग्य है कि सांगोपांग पूर्ण विद्या और धन ऐश्वर्य का सुख भोगने के लिये अपने सदृश पतियों से विवाह करके विद्या और सुवर्ण आदि धन को पाके सब ऋतुओं में सुख देने हारे घरों में निवास करें, तथा विद्वानों का संग और शास्त्रों का अभ्यास निरन्तर किया करें।"

स्पष्ट है कि बिना वेदादि शास्त्रों को पढ़े हुये प्रशंसित कुल बनाना असम्भव सा है।

यजुर्वेद १३।२० में नारी जाति की उपमा दूर्वा घास से देते हुये कहा—

काण्डात्-काण्डात् प्ररोहन्ती परुषः परुषस्परि।
एवा नो दूर्वे प्र तनु सहस्रेण शतेन च॥

अर्थात्—अवयव-अवयव से गाँठ-गाँठ से फूट-फूट कर जैसे दूर्वा घास खूब फैलती है वैसे ही विदुषी स्त्री को अपना कुल बढ़ाना चाहिए।

नारी में किसी प्रकार की तृष्णा, लालच अर्थात् अत्यधिक सांसारिक भोगों में प्रवृत्ति तथा कड़वी वाणी का प्रयोग ये दोनों बने बनाये घर को उजाड़ने के कारण होते हैं। दूसरे शब्दों में इसे यूँ कहा जा सकता है कि नारी के लिये इन्द्रिय संयम अत्यन्त आवश्यक है, उसके त्याग एवं संयम से ही घर का कोना-कोना महक सकता है। इस तृष्णा का कहीं अन्त नहीं है चाहे कितने ही उपभोग्य पदार्थ इकट्ठे कर लें तब भी किसी न किसी की अपेक्षा से वे न्यून ही होते

हैं। मैं कितनी ही ऐसी मन्दभागिनी स्त्रियों को जानती हूँ जो अपने घर में तृष्णा के कारण कभी भी सन्तोष एवं सुख से नहीं रह सकीं, सहनशीलता से कभी काम नहीं लिया, अपनी शक्ति कार्यक्षमता को घर बनाने में नहीं लगा सकीं। सुखाभास प्राप्त करने के लिये जब वे घर की चहारदिवारी से बाहर निकलीं तो बुरी तरह सांसारिक संघर्षों से टकरा गयीं। ठीक ही तो है जो घर में अपनी सहिष्णुता नहीं दिखा सका वह बाहर कैसे सहिष्णु बन सकेगा।

ऐसी ही नारियों के लिये अथर्ववेद ७।११३।१-२ में कहा है—हे **तृष्टिके तृष्टवन्दने**! ऐ लालची तृष्णा की वन्दना करने वाली (भोगों से तृप्त न होने वाली) तू अपनी अतृप्ति के कारण ही अपने पति से **कृतद्विष्टा**—द्वेष किये हुये है और अपने घर का छिन्धि—नाश कर रही है। **तृष्टासि तृष्टिका**—तू लालची होकर निन्दित हो रही है। **विषा विषातकी असि**—तू विषैली बेल के समान है जो अपने पति से द्वेष करती है, अतएव **परिवृक्ता असति**—तू पति के छोड़ने योग्य हो गई है। अथर्ववेद के इन दोनों मन्त्रों से स्पष्ट है कि असीम भोग साधनों की उपलब्धि की इच्छा मनुष्य को कितनी अधोगति तक पहुँचा देती है। गृहस्थ के लिये धन जहाँ अत्यन्त आवश्यक है वहाँ असन्तोष भी कम हेय नहीं। इस प्रकार असन्तोष उत्पन्न करके पति से द्वेष करने वाली स्त्री के लिये मनु महाराज ने व्यवस्था दी है-

संवत्सरं प्रतीक्षेत द्विषन्तीं योषितं पतिः।
ऊर्ध्वं संवत्सरात्त्वेनां दायं हृत्वा न संवसेत्॥

मनु० ९।७७

अर्थात्—पति से द्वेष करने वाली स्त्री की एक वर्ष तक प्रतीक्षा करके यदि उसमें सुधार न हो तो पति उसे छोड़ दे। कटुभाषिणी स्त्री के लिये तो और भी कठोर व्यवस्था देते हुये लिखा 'सद्यस्त्वप्रियवादिनी' मनु० ९।८१ अर्थात् अप्रियवादिनी को तत्काल छोड़

दे। ध्यान रहे, ऐसी ही व्यवस्थाएँ पुरुष के लिये भी हैं एवं समझी जा सकती हैं किन्तु हर अवस्था में सहिष्णु होना अत्यन्त आवश्यक है।

१९७५का वर्ष अन्तरराष्ट्रीय महिला वर्ष के रूप में सर्वत्र मनाया गया। महिलाओं को कुछ नयी उपलब्धियाँ एवं जागरूकता प्राप्त हो. इसके लिये सभी सचेष्ट हैं, कुछ की मान्यता है कि संसद् में महिलाओं को अधिक सीटें प्राप्त हो जायें, अथवा किन्हीं संस्थाओं की अध्यक्षा वा प्रधाना महिलाएँ बनें।

विचार करें यह कितनी थोथी-सी बातें हैं जो महिला वर्ष की उपलब्धियों के रूप में मानी जा रही हैं। नारी की सच्ची उपलब्धि उसके वास्तविक निर्माण एवं घर तथा बाहर सर्वत्र सामञ्जस्य बिठाने एवं प्रेम की सृष्टि करने में है। सच्चे स्नेह की वृष्टि करके ही वह सबको अपना बना सकती है, ऐसी क्षमता भगवान् ने उसे दी है। स्नेह का बन्धन सबसे बड़ा बन्धन है, जो किसी तलवार से काटा नहीं जा सकता। जब नारी ने इस प्रकृति प्रदत्त अलौकिक स्नेह से सम्पूर्ण कुलाय अथवा पुर—नगर को बाँध लिया तब भला पुरुष प्रधान कैसे रहा ? वह तो स्त्री का स्नेहोपजीव्य वास्तव में उसका आधीन हुआ, और स्त्री स्वय में स्वतन्त्र अर्थात् प्रधान।

इस प्रकार अपने कर्त्तव्य कर्मों से विमुख होकर झूठे पद-सीट एवं नाम बदलने आदि से कुछ न हो सकेगा। नारी को तो वेद की उच्च शिक्षा के अनुसार सच्ची विदुषी बनकर कुलायिनी घृतवती एवं पुरन्धिः ही बनना होगा, यही उसकी सच्ची उपलब्धि होगी।



पुण्यगन्धा

ऋग्वेद ७।५५।८ में नारी जाति के लिए 'पुण्यगन्धा' विशेषण आया है। पुण्यगन्धा का अर्थ है पुण्य–उत्तम गन्ध वाली अर्थात् शुभ लक्षणा, उत्तम यश वाली स्त्री। ऋग्वेद के इस सूक्त के प्रायः सभी मन्त्रों में हमारा शयन-कक्ष कैसा होना चाहिये तथा रात्रि में सोते समय चहुं ओर शान्ति होनी चाहिये इन्हीं बातों का वर्णन है। अथर्ववेद ४-५ में भी इस सूक्त के ४ मन्त्र कुछ भेद से पढ़े हुये हैं। "वास्तोष्पति" इस सूक्त का देवता है। बड़ी उत्तम शिक्षाएँ मनुष्य की शयन-चर्या के सम्बन्ध में इन मन्त्रों से प्राप्त होती हैं। जब कि सायणादि भाष्यकारों ने इन मन्त्रों पर काल्पनिक आख्यान का वर्णन कर सूक्त के स्वारस्य को ही समाप्त कर दिया है (द्र० ऋ० ७।५५।३) कितनी निराशा होती है इन भाष्यकारों के इस प्रकार के अर्थों को देखकर।

प्रकृत मन्त्र में 'पुण्यगन्धाः स्त्रियः' कहा गया है। यहाँ विचार यह करना है कि स्त्रियाँ पुण्यगन्धा उत्तम यश वाली कैसे बन सकती हैं? मेरे विचार में देवी स्वरूपा किसी नारी का यश उसके अपने देवीत्व (दिव्य गुणों की) नारीत्व की रक्षा में है, जो कि स्त्री के वेशभूषा शील–स्वभाव, आचार-व्यवहार एवं वैदुष्य पर निर्भर करता है—

वेशभूषा—मनुष्य के आन्तरिक सद्गुणों का प्रथम परिचय वेशभूषा से ही प्राप्त होता है। देवियों के वस्त्र बड़े मर्यादित सात्त्विक होने चाहियें। इस विषय में विदुरनीति में बहुत सुन्दर कहा है–

मानेन रक्ष्यते धान्यमश्वान् रक्षत्यनुक्रमः।
अभीक्ष्णदर्शनं गाश्च स्त्रियो रक्ष्याः कुचैलतः ॥ (विदुर० २।४०)

यहाँ विदुर महाराज कहते हैं कि धान्य अन्न की तोल से रक्षा होती है, घोड़े निरन्तर प्रशिक्षण से रक्षित होते हैं, बराबर ध्यान रख

के गौओं की रक्षा करनी चाहिये, तथा स्त्रियों की रक्षा बुरे वस्त्रों से की जानी चाहिये, अर्थात् स्त्रियों को कुत्सित, भद्दे, अश्लील जिनसे दुराचार की अभिवृद्धि हो ऐसे वस्त्र नहीं पहनने चाहियें। स्त्रियों की उत्तम पोशाक तत् तत् देश के आचरण-धर्म का प्रतीक है।

दुर्भाग्य से इस समय हमारा देश नाना प्रकार की भद्दी पोशाक धारण करने के रोग से ग्रस्त है। नीचे एक रंग-बिरंगे कपड़े का ढीला ढाला चोंगा, ऊपर मात्र एक कुर्त्ती जिसमें चुन्नी या दुपट्टे का कहीं पता नहीं होता अथवा काले-काले पेंजामें, ऊपर मात्र शर्ट एवं बिखरे हबशियों जैसे बाल यही आजकल की फैशनपरस्त नवयुवती की वेश-भूषा है। कितनी गिरावट वाला घिनौना यह रूप है। आज प्रत्येक नवयुवक एवं नवयुवती का आदर्श नपैना सिनेमा के अभिनेता या अभिनेत्री बने हुये हैं। प्राचीन युग में ऋषि-मुनियों के असली पावन चरित्र का अनुकरण (नकल) समस्त लोग करते थे, किन्तु आज अभिनेताओं के अभिनय वाले नकली जीवन को असली वास्तविक जीवन में ढाला जा रहा है, जिसमें आर्य परिवार भी पीछे नहीं हैं, यह और भी दुःख की बात हैं।

शील स्वभाव–नारी का दूसरा यश उसके नेक स्वभाव में है। देवी का स्वभाव मृदु, कोमल किन्तु गम्भीर एवं निर्भीक होना चाहिये जिससे वह सम्पूर्ण परिवार को एकता के सूत्र में बांध सके। नारी का सम्मान पुरुषों से अधिक इसलिये माना गया कि उसमें सत्यता, दृढ़ता, धैर्य आदि गुणों की अधिकता है, इसीलिये किसी स्त्री को मक्कारी या ठगी करते हुये देखकर लोग अधिक आश्चर्य प्रकट करते हैं।

आचार-व्यवहार–आचार से तात्पर्य यहाँ नारी की आन्तरिक पवित्रता से है। जिस आचरण की दिव्यता को लेकर आज भी महारानी, सीता, दमयन्ती आदि का चरित्र जन-जन के हृदयों में आसन बिछाये हुये है, तथा 'यावत् चन्द्रदिवाकरौ' जब तक सृष्टि में चन्द्रमा और सूर्य हैं तब तक के लिये अमर हो गया है, वह दिव्य चरित्र समस्त

भू-मण्डल की नारियों का आदर्श एवं दृढ़ता तथा साहस प्रदान करने वाला है। आज नारी को इतना अधिक व्यापार का साधन बना दिया गया है कि कतिपय स्थानों में तो शराब की दुकानों पर भी शराब की बोतल पकड़े हुये नारी की तस्वीर को मैंने स्वयं देखा। फिल्मों में नारी के स्वरूप को अत्यन्त ही छिछला रूप प्रदान कर दिया है। अभिनय में जहाँ उबासी भरनी, रोना, उत्तेजनामय प्रदर्शन करने हों वहीं इनका उपयोग किया जाता है जिससे यही प्रभाव पड़ता है कि नारी मात्र इसी के लिये है या यही उसकी प्रकृति है। आज ये कुल ललनाएँ क्लबादि में जाकर शराब के प्याले भी बांटतीं एवं नाच भी करती हैं। इस पर कहाँ तक कहा जाये।

वैदुष्य –प्रत्येक नारी को धार्मिक विदुषी होना चाहिये। केवल बी० ए०, एम० ए० डिग्री प्राप्त नहीं। इन डिग्रियों से आज कोई वास्तविक योग्यता सिद्ध नहीं हो पा रही है। नारियों को सुशिक्षित करने से ऋषि दयानन्द का अभिप्राय यह नहीं था कि वह मात्र कॉलिज की शिक्षा प्राप्त कर अकर्मण्य एवं फैशन-परस्त बन जाये, किन्तु उनका दिव्य स्वप्न था कि प्रत्येक नारी वेद की वास्तविक शिक्षाओं को ग्रहण करती हुई, अपने आपको समुन्नत करे जैसा कि उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास में लिखा है—'जैसे पुरुषों को व्याकरण, धर्म और अपने व्यवहार की विद्या न्यून से न्यून अवश्य पढ़नी चाहिये वैसे स्त्रियों को भी व्याकरण, धर्म, वैद्यक, गणित, शिल्प विद्या तो अवश्य ही सीखनी चाहिये'। आर्य समाज ने स्त्री शिक्षा हेतु आर्य स्कूल तो बहुत खोले किन्तु उनका मार्ग आर्ष पाठ-विधि से बहुत दूर होने के कारण वहाँ से वेद की विदुषी न निकल सकीं, किन्तु फैशन-परस्त आधुनिक लेडियों की ही संख्या बढ़ी। स्कूल में ही सारी शक्ति लगाने पर भी नतीजा कुछ न निकला। आर्य परिवार भी उद्देश्य से भटक गये। अब तो अपने आपको

बचाने के लिये कुछ प्रतिज्ञाएँ अच्छे माता-पिता को आर्य समाज मन्दिर में बैठकर लेनी चाहिए--

(१) प्रत्येक अपनी कन्या को हम (माता-पिता) इतनी हिन्दी की शिक्षा विशेष रूप से घर पर अवश्य देंगे जिससे कि वह किसी भी परिवेश में जाकर ऋषि दयानन्द के वेदभाष्य के भावार्थ को समझ सके, तथा संस्कृत की भी इतनी शिक्षा अवश्य देंगे कि वह सामान्य रीति से "ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका" एवं भाष्य की संस्कृत समझ सकें। अंग्रेजी की शिक्षा हो या न हो।

(२) अपनी प्रत्येक ११-१२ वर्ष की कन्या को बिना चुन्नी या दुपट्टे के घर से बाहर नहीं जाने देंगे तथा प्रारम्भ से ही सभ्य-सौम्य सादी वेशभूषा धारण करायेंगे।

(३) उच्छृंखल वातावरण एवं चलचित्रादि से बचायेंगे जिससे उनका जीवन उत्तम हो सके।

इन कुछ निर्देशों का भली प्रकार पालन करने से बहुत सम्भव है कि आर्य परिवार अपने आप में बचे रहें एवं इन्हीं में से 'पुण्यगन्धा' उत्तम यश वाली स्त्रियां निकल सकें।

—:०:—

इष्टका

इष्टका एवं इष्टिका इन दोनों शब्दों का व्यवहार सम्प्रति 'ईंट' (जिससे भवन तैयार होते हैं) अर्थ में होता है। इष्टका शब्द का लोक व्यवहार में प्रचलित यह अर्थ योगरूढ़ि के रूप में समझना चाहिए। 'ईंट' अर्थ में 'इष्टिका' शब्द का व्यवहार यज्ञ-कर्म से ही प्रारम्भ हुआ यह निश्चित है। इस शब्द की शतपथ ब्राह्मण में लिखी हुई निम्न निरुक्ति इस बात की पोषक है—

१. तद्यदिष्टात्समभवंस्तस्मादिष्टकाः ॥ शत० ६।१।२।२२।
२. तद्यदस्माऽइष्टे कमभवत्तस्माद्वेवेष्टकाः ॥ शत० ६।१।२।२३।

यजु० १७।२ में इन इष्टकाओं को 'इमा मे अग्न इष्टका धेनवः" कहा है, अर्थात् गौ के समान इष्टकायें कहा हैं। जिस प्रकार गौ अमृत तुल्य दुग्ध देकर सबको तृप्त करती है उसी प्रकार वर्षा आदि के द्वारा सुखी करने वाली ये इष्ट-गुण-साधिका इष्टकायें हैं यह यहाँ तात्पर्य है। ऋषि दयानन्द ने यहाँ इस मन्त्र का भावार्थ लिखा है—"अच्छे कारीगरों से चिनी हुई ईंटें घर के आकार को शीत, उष्ण, वर्षा और वायु आदि से मनुष्यादि की रक्षा कर आनन्दित करती हैं वैसे ही अग्नि में छोड़ी हुई आहुतियाँ जल, वायु और औषधियों के साथ मिल के सबको आनन्दित करती हैं।"

जिस समय यज्ञ-कर्म का अतिशय व्यापक प्रचार था उस समय यज्ञवेदी का चयन निर्माण विभिन्न प्रकार की आकृतियों से इन्हीं इष्टकाओं द्वारा किया जाता था। इन विभिन्न आकृति वाली यज्ञवेदी के श्येनचित्, कङ्कचित्, द्रोणचित् आदि नाम थे। बड़े नियमपूर्वक मन्त्रोच्चारण करके इन इष्टकाओं के चयन की विधि की जाती थी जो कि कात्यायन श्रौत सूत्रादिकों (द्र० कात्यायन श्रौ० १६।४-५।१) में वर्णित है। जिन विशेष मन्त्रों को बोलकर विभिन्न प्रकार के यज्ञों में भिन्न-भिन्न प्रकार की इष्टकाओं का चयन होता था; उस

उच्चरित मन्त्र के विशिष्ट प्रतीकात्मक शब्द से उस ईंट का ही नाम पड़ जाता था। तद्यथा वर्चः, तेजः शब्दों वाले मन्त्रों को बोल कर चयन की गई ईंट वर्चस्या इष्टका, तेजस्या इष्टका (द्र० अष्टा० ४।४।१२५) कहलाती थी। हमारे जीवन निर्माण में यज्ञ कर्म का सर्वाधिक महत्त्व है, यह हमारी कामनाओं को पूर्ण करने वाला है, इसे श्रेष्ठतम कर्म कहा गया है। इस प्रकार की नाना प्रकार की कामनाओं को पूर्ण करने वाले यज्ञ यागादियों की विधियाँ श्रौतों में वर्णित हैं, जो आज स्वाध्याय आदि से विरत होने के कारण अप्रचलित हो चुकी हैं। इन यज्ञों को पूर्ण करने में वेदी निर्माण के लिए इष्टकाओं का (मृत्खण्ड-विशेष का) अतिशय महत्व था, अतः इन्हें इष्यते असौ=इष्टका (अभीष्ट कर्म की सिद्धि के लिए जिसको प्राप्त किया जाता है) इष्ट सुख की साधिका=इष्टका कहा गया।

इष्टका शब्द में 'इष्यशिभ्यां तकन्' (उणा० ३।१४८) इस उणादि सूत्र से इस धातु से तकन् प्रत्यय एवं 'क्षिपकादीनाञ्च उपसंख्यानम्' (अष्टा० वा० ७।३।४५) वार्त्तिक से इत्त्वनिषेध हुआ है। वैसे लौकिक भाषा में इसी अर्थ में 'इष्टिका' शब्द भी है।

इष्टका शब्द के पूर्वोक्त शाब्दिक बहिरंग विवेचन के पश्चात् अब हमें यजु० के १३ वें अध्याय के २१ वें मन्त्र पर ध्यान देना है। मन्त्र है—

या शतेन प्रतनोषि सहस्रेण विरोहसि।
तस्यास्ते देवीष्टके विधेम हविषा वयम्॥

इस मन्त्र का देवता पत्नी है। मन्त्रार्थ इस प्रकार है—देवि इष्टके! हे इष्टका के समान देवि! या शतेन=जो तुम सैकड़ों की संख्या से प्रतनोषि=बढ़ती हो एवं सहस्रेण विरोहसि=सहस्रों प्रकार से बढ़ाती हो, तस्याः ते=ऐसी तुम्हारी हविषा वयम् विधेम=अन्न भूषणादि पदार्थों से हम लोग सेवा करें। "इष्टका के समान देवी" यहाँ वाचकलुप्तोपमालंकार से कहा गया है। गृह देवी को इष्टका

बनना है, अतः विचारणीय है कि इष्टका के अपने क्या वैशिष्टच हैं? जिन्हें नारी को धारण करना है।

(१) सर्वप्रथम इष्टका दृढ़ स्वरूप वाली है, अतः नारी को भी गृहस्थाश्रमरूपी भवन को सुदृढ़ बनाने के लिये स्वस्थ सुपुष्ट शरीर वाला अपने आपको बनाना है। नारी का सुपुष्ट होना एक सुखी गृहस्थ के लिये अत्यन्त आवश्यक है और इसके लिये आवश्यक है कि प्रत्येक नारी स्वास्थ्य एवं आत्मरक्षा के उपाय को भलीभाँति जाने एवं समझे। यजुर्वेद २९।५० में आये "अश्वाजनि" शब्द का अर्थ ऋषि दयानन्द ने "हे घोड़ों को शिक्षा देने वाली विदुषी रानी" यह अर्थ किया है जिससे पता चलता है युद्धादि विद्या की पूर्ण जानकारी भी नारी को होनी चाहिये। तभी 'इष्टका' की सुदृढ़ता प्राप्त होगी। ऐसी सुदृढ़ शक्ति वाली बनने के लिये उसे नित्य नियमपूर्वक प्राणायाम, आसन, व्यायाम आदि करने चाहियें तथा लाठी भाले आदि शस्त्र संचालन भी सीखने चाहिये, जिससे कोई दुष्ट, लम्पट व्यक्ति उसके समीप तक भी न फटक सके। काश ! कि आज कल की फैशन की तितली को गले में चुन्नी लटकाकर चलने की अपेक्षा लाठी लेकर चलने का अभ्यास होता तो हमारे राष्ट्र के चरित्र का इतना तेजी से पतन कभी न होता।

फैशन की दिवानी ये बहिनें अपने आपको दुबला-पतला शरीर वाला बनाने के लिये नित्यप्रति पौष्टिक खाद्य वस्तुओं का परित्याग करते हुये केवल स्वल्पाहार मात्र लेकर दिन व्यतीत करती हैं, जिससे शरीर की हड्डी-हड्डी निकल आती है। कभी-कभी तो वह इससे अत्यन्त कुरूप एवं भयावह दीखने लगती हैं। इन बहिनों को यह पता नहीं कि शरीर सुगठित, सुडौल, सुन्दर तो व्यायाम आदि के नित्य अभ्यास से बनेगा; न कि इस प्रकार डाइटिंग करने से।

इस प्रकार शरीर को सुदृढ़ बनाने की यह 'इष्टका' की प्रथम शिक्षा है।

(२) दूसरी बात है जिस प्रकार सैकड़ों हजारों इष्टकायें मिलकर एक भवन का निर्माण करती हैं उसी प्रकार गृहस्थ अथवा समाज रूपी भवन का निर्माण बहुसंख्या में मिलकर बहिनें करें, एवं उसे सशक्त सुविस्तृत (प्रतनोषि) सम्पन्न तथा प्रतिष्ठा वाला बनायें। श्रेष्ठ पुत्र-पौत्रादिकों से घर का आँगन पूरित हो।

(३) तृतीय बात है कि इष्टकायें सदैव नींव के भीतर अथवा दीवाल के अन्दर चुनी हुई रहती हैं बाहर प्रदर्शन में नहीं आतीं। भवन को बनाने में उनकी इतनी महत्त्वपूर्ण भूमिका होते हुए भी वह स्वयं प्रत्यक्ष प्रदर्शन से दूर हैं। वस्तुतः अपने आपको प्रदर्शन से दूर रखकर स्वयं का अस्तित्व मिटाकर किसी महत्वपूर्ण कार्य को कर डालना देवत्त्वपन का ही सूचक है। संसार में बहुत थोड़े ही लोग ऐसे होते हैं जो काम तो पूरा करते हैं, किन्तु अपनी ख्याति यत् किञ्चित् नहीं चाहते हैं। अपने आपको गलाकर बीज सदैव एक हरे-भरे वृक्ष का रूप धारण करता है। लोग वृक्ष के फल-फूल खा-पीकर अघाते नहीं किन्तु वृक्ष बनाने वाला वह नन्हा बीज अपना सर्वस्व दान कर चुका होता है इसको कौन जानता है? हे महिमामयी नारी! इष्टका के उपर्युक्त त्याग बलिदान एवं सहिष्णुता को अपने आप में धारण करने से ही गृहस्थ अथवा समाजरूपी विशाल भवन सुदृढ़ हो सकेगा यह तीसरी शिक्षा इष्टका से ग्रहण करने की है।

प्रकृत मन्त्र का भावार्थ महर्षि दयानन्द कृत अवश्य द्रष्टव्य है—

"जैसे सैकड़ों प्रकार से हजार ईंटें घर रूप बन के सब प्राणियों को सुख देती हैं, वैसे जो श्रेष्ठ स्त्री लोग पुत्र पौत्र ऐश्वर्य और भृत्य अदि से सबको आनन्द देवें उनका पुरुष लोग निरन्तर सत्कार करें, क्योंकि श्रेष्ठ पुरुष और स्त्रियों के संग के बिना शुभ गुणों से युक्त सन्तान कभी नहीं हो सकते, और ऐसे सन्तानों के बिना माता-पिता को सुख कब मिल सकता है?"

वस्तुत: इष्टका के समान त्यागादि गुण नारियों ने आज सर्वथा खो दिये हैं ऐसी बात नहीं। घर-घर में आज भी नारी के त्याग एवं बलिदान को देखकर आंखें भर आती हैं। कहीं परित्यक्ता के रूप में एवं कहीं विधवा के रूप में इनके रुदन का क्या अनुमान लगाया जा सकता है ? कभी-कभी तो ये बहिनें घर में नित्य जहर के घूँट पीकर रहती हैं किन्तु पड़ोसियों तक को पता नहीं लगता। यह सब कुछ होते हुए भी उनके त्याग का कोई मूल्य नहीं क्योंकि वे स्वयं में अविद्यान्धकार एवं कुशिक्षाओं से ग्रस्त हैं, सच तो यह है कि वे पशुवत् ही जीवन व्यतीत करती हैं, उनके त्याग में इसीलिए निखार नहीं आ रहा है कि वे अविद्याग्रस्त हैं। अतः तात्पर्य यह हुआ कि उस त्याग एवं बलिदान का ही महत्त्व है जो बुद्धिमत्तापूर्वक सोच समझकर वास्तविक निर्माण के लिये किया जा रहा हो; जड़ सदृश रह कर नहीं ! इष्टका से नारी जाति की उपमा का यही अभिप्राय है।

—: ० :—

प्रतरणी गृहाणाम्

कहते हैं, ये संसार भवसागर है। अगणित कुल-परिवार इसमें निवास करते हैं, जो किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिये अथवा भव-सागर से पार जाने के लिये बराबर गतिशील हैं। मोटे तौर पर इन परिवारों का कार्य जीविकोपार्जन, अपने आश्रितों के भोजन आच्छादन का प्रबन्ध, बच्चों की शिक्षा-दीक्षा के लिए सुविधायें जुटाना ही होता हैं, किन्तु इन सबके पीछे भी एक सूक्ष्म प्रयोजन, सुख-सन्तोष की उपलब्धि या मोक्ष प्राप्ति का है। जीवन में जी लेना इतना प्रशंसास्पद नहीं जितना कि उस जीवन में सुख-सन्तोष की उपलब्धि का महत्त्व है। कभी-कभी जीवन में हारे-थके लोग 'सब कुछ बेकार है, गृहस्थ जीवन नरक है, की टेर लगाया करते हैं जिसका वास्तविक कारण होता है, उनमें वेद शिक्षा का अभाव! अतः इस नौका रूपी गृहस्थ जीवन में सवार लोगों को अगाह करते हुए अथर्व० १४।२।२६ में कहा—

'सुमंगली प्रतरणी गृहाणां सुशेवा पत्ये श्वशुराय शम्भूः'

अर्थात्–तू सुमंगली एवं गृहस्थ-जीवन की नौका को बढ़ाने वाली-खेने वाली पतवार हैं। तू पति के लिए कल्याणप्रदा तथा सास-श्वसुर के लिए सुख देने वाली है।

जब नौका की पतवार उत्तम न हो तो नौका अवश्य डगमगा जायेगी। आज ये भयावह स्थिति परिवारों में बनती जा रही है।

महाभारत के युद्ध के समय अर्जुन का रुदन ध्यान देने योग्य है। आमने सामने कौरवों पाण्डवों की सेना खड़ी है, पर ऐन समय में अर्जुन ने लड़ने से इन्कार कर दिया। शायद उसे मोह हो गया है, पर मोह के साथ-२ बात कुछ और भी है, जिसे वह स्पष्ट करता है—

कुलक्षये प्रणश्यन्ति कुलधर्माः सनातनाः।
धर्मे नष्टे कुलं कृत्स्नमधर्मोऽभि भवत्युत॥

अधर्माभिभवात्कृष्ण प्रदुष्यन्ति कुलस्त्रियः।
स्त्रीषु दुष्टासु वार्ष्णेय जायते वर्णसंकरः॥
(गीता १।४०,४१)

अर्थ :—हे कृष्ण ! कुल का नाश होने पर सनातन कुल के धर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म का नाश होने पर सम्पूर्ण कुल का नाश तथा अधर्म की उत्पत्ति होती है। अधर्म के छा जाने पर कुल की स्त्रियाँ दूषित हो जाती हैं, तथा हे वार्ष्णेय कृष्ण ! स्त्रियों के दूषित हो जाने पर वर्णसंकर हो जाता है।

अर्जुन ने यहाँ बहुत बड़ी बात कह दी है जिस पर अच्छे-अच्छे गीताध्यायी भी ध्यान नहीं दे पाते। उसे इस युद्ध में एक बहुत बड़ी चिन्ता है और वह है अधर्म के छा जाने पर स्त्रियों के दूषित एवं नष्ट होने की। अर्जुन के शब्दों से लगता है कि स्त्रियों का दुष्ट होना अपने सर्वनाश को आमन्त्रण देना है जो कि वास्तविकता है। आखिर घर की पतवार नष्ट हो जाये तो यह घर चले कैसे ?

प्रायः परिवारों में यह कहते हुए भाइयों को मैं सुनती हूं कि "हमें तो काम काज से फुरसत नहीं होती पर हमारी पत्नी सिनेमा की शौक़ीन है उसे पूरा करने के लिए हमें सिनेमा जाना पड़ता है।" बहिनें जरा सोचें, यह बात स्त्रियों की कितनी गिरावट की सूचक है ! ऐसा लगता है स्त्रियों की सारी विचार-शीलता का एक साथ पतन हो गया क्या ? अफ़सोस ! जेब से पैसे खर्च कराकर नैतिक पतन की सामग्री जुटाकर घर में सजा रही हैं।

आज छोटे-छोटे बच्चों के लिए भी शिक्षा इतनी मँहगी हो गई है कि लोग परेशान हैं। ४-५ वर्ष के बच्चे को अच्छे स्कूल में प्रविष्ट कराने के अभिलषुक अभिभावकों को दो-ढाई सौ रु० मासिक तक खर्च करने पड़ जाते हैं। जरा सा ध्यान देने पर यह कार्य महिलाओं द्वारा बड़ी सरलता से किया जा सकता है जिससे बच्चों पर संस्कार

भी उत्तम पड़े एवं बच्चों की प्रारम्भिक शिक्षा में ही इतना व्यय-भार न उठाना पड़े। उचित शिक्षा का अभाव आज सन्तान को पथ-भ्रष्ट बनाता जा रहा है।

प्रतरणी के साथ-साथ प्रस्तुत अथर्ववेद के मन्त्र में नारी को कल्याणप्रदा सुखकारिणी भी कहा है, और यह तभी सम्भव है जब वह विचारशील, गम्भीर एवं परिवार में सामञ्जस्य उपस्थित कर सकती हो।

ऋग्वेद ७।४०।७ में अध्यापन एवं उपदेश करने वाली स्त्रियों के गुणों का वर्णन करते हुए बताया है कि नारी को जल तुल्य शान्त होना चाहिये।

नारी के सौम्यता गुण को प्रकट करने के लिये "जल" से उत्तम और उसकी कोई उपमा ही नहीं हो सकती। संसार में दो भिन्न-२ दिशाओं में खड़े हुये खम्भे परस्पर नहीं मिल सकते, किन्तु दो भिन्न-भिन्न दिशाओं में प्रवाहित होने वाली जल की धारायें परस्पर मिल सकती हैं, क्योंकि उनमें तरलता है यही जल के समान तरलता नारी में भी आवश्यक है ताकि वह सभी कठोरताओं, द्वेषभावनाओं को तिलांजलि देकर सबको प्रसन्न कर सुशेवा बन सके। जीवन में ऊष्मा भी आवश्यक है किन्तु घोर निदाघ में जब असह्य ताप हो जाता है तो धरती कहीं-कहीं से दरक जाती है, फट जाती है पर आसमान में उठी हुई जब एक भी बदली बरस जाती है, तो सारी दरारें मिट जाती हैं, समाप्त हो जाती हैं। क्रोध, विद्वेष रूपी अति उष्णता से फटे हृदय, जल रूपी स्नेह मृदुता तथा प्रेम रसधार से ही जुड़ सकते हैं, यह जलीय क्षमता वाला नारी का प्रथम गुण है इसी गुण के द्वारा 'प्रतरणी गृहाणां सुशेवा' जैसे शब्दों की सार्थकता है।

—:०:—

उखा

प्रत्येक गृहिणी का गृह कुशल होना आवश्यक है, या यों कहें कि गृह कुशलता ही गृहिणी का उच्च पद प्राप्त करने का मार्ग है तो भी ठीक है। गृह कुशलता में सर्वप्रथम पाकविद्या का ज्ञान अपेक्षित है। गृह के सदस्यों के उत्तम स्वास्थ्य, प्रसन्नता एवं आर्थिक सन्तुलन बनाये रखने के लिए पाकविद्या का भली प्रकार ज्ञान प्रत्येक नारी के लिए परम आवश्यक है। जैसा कि यजुर्वेद में कहा—

सिनीवाली सुकपर्दा सुकुरीरा स्वौपशा।
सा तुभ्यमदिते मह्योखां दधातु हस्तयोः॥

(यजु० ११।५६)

अर्थात्—(महि अदिते) हे पूजनीय अखण्डित आनन्द देने वाली गृहिणी जो तू (सिनीवाली) अन्नपूर्णा (सुकपर्दा सुकुरीरा) उत्तम केशों वाली, अच्छे आभूषणों वाली (स्वौपशा) अच्छे स्वादिष्ठ भोजन बनाने वाली है (सा) ऐसी (तुभ्यम्) तेरे लिये (हस्तयोः) हाथों में (उखाम्) बटलोई को तू (आ दधातु) धारण करे।

स्वौपशा का अर्थ उव्वट महीधर ने 'सम्यक् उपशेते शयनं कुरुते यैरवयवविशेषैः·····शोभनः शयनविदग्धो विलासचतुर औपशोऽवयवसमूहो यस्याः सा' किया है। संकोचवशात् मैं इसका अनुवाद हिन्दी में नहीं कर रही। भला इन अकल के दिवालिये लोगों से पूछें कि जो विलास चतुर हो शयन कुशल हो वह बटलोई चढ़ावे दोनों की क्या संगति है क्या सोने में कुशल होने से बटलोई ठीक चढ़ सकेगी? यहाँ ऋषि दयानन्द कृत 'उप=समीपे श्यति=तनूकरोति यया पाकक्रियया सोपशा, तस्या इदं कर्म औपशम्' यह अर्थ कितना सुन्दर एवं संगत है।

मन्त्र में गृहिणियों को उखा का आधान करने की बात कही है। उखा कहते हैं बटलोई को जिसमें दाल आदि व्यञ्जन बनाये जाते हैं।

'उखा को धारण करे' कहने का तात्पर्य है कि स्त्री को दाल शाकादि बनाना बड़ी उत्तम रीति से आना चाहिये।

यजुर्वेद १२।७२ में कहा गया है कि पाचिका स्त्री को चाहिए कि वह पुष्टिकर एवं रोगों को दूर करने वाला सुस्वादु भोजन बनावे। इसी प्रकार यजुर्वेद २८।२३ में भी यह निर्देश है कि अन्न शाक, कढ़ी आदि मनुष्यों को अच्छा बनाना आना चाहिए। कहना न होगा कि जिन घरों में स्त्रियाँ आलस की मारी पड़ी रहती हैं अथवा स्वादिष्ठ अन्न को बनाना नहीं जानतीं उस घर के पुरुष एवं बच्चे भी प्रायः होटलों एवं बाजारों में खोम्चे चाट आदि खाते रहते हैं, जिससे पैसे बरबाद होते हैं एवं अस्वच्छता, तीक्ष्ण मसाले मिर्च आदि से इनके पेट प्रायः खराब हो जाते हैं। जितने पैसे यहाँ बाजार में बरबाद होते हैं उनसे कहीं कम पैसों में सुन्दर स्वादिष्ठ भोज्य वस्तु घर में एक सुगृहिणी तैयार कर सकती है। उस समय तो मैं और भी लज्जा से गड़ सी जाती हूँ जिस समय पुरुषों के साथ-साथ स्त्रियों को एक हाथ में प्लेट एवं दूसरे हाथ में चम्मच लिए हुए गोलगप्पे एवं भल्ले आदि सड़क के किनारे बड़ी शान से खड़े होकर धड़ाधड़ खाते हुये देखती हूँ। वाह रे सुगृहिणी! अपने हाथ से तो उत्तम व्यञ्जन बना नहीं सकी, सड़क पर आकर चाट चाटने में पुरुषों का साथ देने लगी। इस देश को चाट चाटने का ऐसा रोग लग गया कि चाट बेचने वालों ने दुमजिले तिमंजिले भवन बनवा लिए और दोने खाने वाले लोग पैसे तथा स्वास्थ्य को बरबाद कर दिवालिये बन गये।

ओ मेरी प्यारी बहिनों! यदि आप अपने पति की सच्ची हित-चिन्तिका हो, बच्चों की प्यारी माँ हो तो सुन्दर स्वादिष्ठ सादा स्वास्थ्यप्रद उत्तम भोजन बनाना सीखो। स्वादिष्ठता केवल मसालों की अपेक्षा नहीं रखती प्रिय भावनाओं की भी अपेक्षा रखती है। भोजन में वह सम्मोहन शक्ति है कि इस रहस्य को जो पत्नी जान

लेगी वह अवश्य ही रुचि अनुकूल भोजन तैयार करके अपने गृहस्थ जीवन में आई हुई बहुत सी विषमताओं को दूर कर लेगी। इसी-लिए तो 'सिवाति बध्नाति भूतानि सिनमन्नं तद्वती, सिनिनी च सा वाजिनी चेति सिनीवाली' नारी को कहा—अर्थात् सिनीवाली= अन्नपूर्णा जो अन्न से सबको बाँध लेती है, सुस्वादु भोजन बनाकर सबको वश में रखती हैं। कभी-कभी आलसी नारियाँ पुरुषों को होटल पर खा आने के लिए उकसाया करती हैं ताकि उन्हें रसोई से मुक्ति मिली रहे किन्तु पुरुष घर पर ही भोजन करना चाहते हैं, तब ये स्त्रियाँ बड़-बड़ किया करती हैं कि 'कभी तो मुक्ति दिया करो' पर ऐसी मूर्खा स्त्रियों को यह नहीं पता है कि उनके लिए यह कितने सौभाग्य की बात है कि उनका पति उनकी हाथ की ही रसोई बनी खाना चाहता है चाहे वह जैसी भी जली-कटी बनी हुई हो। इससे तो गृहिणी को बड़ी प्रसन्नता होनी चाहिए। वस्तुतः माँ बहिन एवं पत्नी की सुस्वादु भोजन बनाकर खिलाने की जो भाव-नायें हैं वह अतुलनीय ही हैं। भारतीय विदुषी नारी इस तत्त्व को समझती हुई हमेशा अपने धर्म एवं कर्त्तव्य का पालन करती रही किन्तु पाश्चात्य अन्धानुकरण करती हुई जिन नारियों ने अपनी मति नष्ट कर ली उन्होंने न केवल अपना सहज नारीत्त्व नष्ट कर लिया बल्कि उस स्थिर प्रेम के भी दर्शन न कर सकीं जो पत्नी द्वारा अति हितचिन्ता से परिश्रम करने के पश्चात् पति की आँखों की कोरों से कभी-कभी झलक जाया करता है।

यह तो हुआ आलसी बहिनों का हाल किन्तु ऐसी भी बहिनें मेरे देश में हैं जिन्हें किसी पदार्थ का गुण अवगुण क्या है, एवं कैसे उसे राँधना है कुछ नहीं जानतीं। एक पाव दाल में दो लोटा पानी एवं दो छटांक नमक डालकर बटलोई चूल्हे में चढ़ा दिया यह भी तो 'उखां दधातु हस्तयोः' हो गया। वस्तुतः पाकविद्या भी एक विज्ञान है जिसे जानना ही चाहिए तभी तो ऋषिवर दयानन्द जो स्वयं

बहुत अच्छा भोजन बनाना जानते थे, नारियों के सम्बन्ध में यजुर्वेद १९।१५ के भावार्थ में लिखते हैं—

'सब कुमारियों को योग्य है कि ब्रह्मचर्य से व्याकरण धर्मविद्या और आयुर्वेदादि को पढ़, स्वयंवर विवाह कर औषधियों को और औषधिवत् अन्न और दाल कढ़ी आदि अच्छा पका उत्तम रसों से युक्त कर पति आदि को भोजन करा तथा स्वयं भोजन करके बल आरोग्य की सदा उन्नति किया करें।'

पाठक यहाँ देखें कि जहाँ ऋषिवर को यह चिन्ता है कि नारियाँ व्याकरण विद्या एवं धर्मविद्या को पढ़ें वहाँ उनको इसकी भी पूरी चिन्ता है कि उन्हें दाल कढ़ी बनाना अच्छी प्रकार आवे। कहते हैं ऋषिवर स्वयं अपने हाथ जड़ी-बूटी डालकर ऐसी कढ़ी तैयार करते थे जिसे महीनों सुरक्षित रखा जा सकता था। इस प्रकार 'उखा का आधान' अर्थात् रसोई बनाना नारी का गौरवपूर्ण कर्त्तव्य है यह जान लेना चाहिए।

अन्त में एक बात सामयिक समस्या के रूप में और लिखती हूँ कि माताओं को भूल कर भी अपने बच्चों को चॉकलेट, गन्दी आईसक्रीम एवं एक नई बीमारी चिंगम जिसे बच्चे बार-बार मुँह में डालते एवं निकालते हैं कभी भूलकर खाने को नहीं देना चाहिए। यह सब उनके लिए जहर है जिस पर पृथक् विस्तार से प्रकाश डाला जा सकता है।

—:०:—

उपजिह्विका

संस्कृत के लौकिक एवं वैदिक दोनों ही कोशों में 'उपजिह्विका' शब्द दीमक के अर्थ में आया है। निरुक्त में यास्क ने 'उपजिह्विका उपजिघ्रच:' (निरु० ३।२०) अर्थात् सूँघने में जो विशेष पटु हो ऐसी कीटिका (दीमक) अर्थ किया है। उव्वट, महीधर, (यजु० ११।७४) एवं सायण तथा दुर्गाचार्य (ऋ० ८।१०२।२१) सभी ने दीमक अर्थ करते हुए मन्त्र का अर्थ प्रदर्शित किया है, किन्तु महर्षि दयानन्द ने-

यदत्त्युपजिह्विका यद्वम्रो अतिसर्पति ।
सर्वं तदस्तु ते घृतं तज्जुषस्व यविष्ठ्य ॥

यजु० ११।७४

इस मन्त्र में 'उपजिह्विका' शब्द का 'उपगता-अनुकूला जिह्वा यस्याः सा उपजिह्विका' ऐसा अर्थ समास में 'गत' शब्द का लोप करके (मध्यमपदलोपी समास) किया है अर्थात् जिसकी जिह्वा इन्द्रिय अनुकूल-वश में हो, जिसे स्वादेन्द्रिय की लोलुपता न हो ऐसी 'उपजिह्विका' स्त्री। निरुक्त की निरुक्ति से भिन्न किन्तु व्याकरण संगत ऐसे निर्वचन प्रदर्शित करने में ही ऋषि दयानन्द का ऋषित्व छिपा था। इस प्रकार के भिन्न-भिन्न दृष्टिकोण देकर उन्होंने मन्त्रार्थ को अधिक व्यापक बनाया। प्रकृत मन्त्र का भावार्थ स्वामी जी इस प्रकार लिखते हैं—

'जिस पुरुष से पुरुष वा स्त्री का व्यवहार सिद्ध होता हो उसके अनुकूल स्त्री-पुरुष दोनों वर्त्तें। जो स्त्री का पदार्थ है वह पुरुष का और जो पुरुष का वह स्त्री का भी होवे। इस विषय में कभी द्वेष नहीं करना चाहिये, किन्तु आपस में मिल के आनन्द भोगें।'

किसी भी पदार्थ के प्रयोग में पुरुष एवं स्त्री को लालची, लुब्ध नहीं होना चाहिये, किन्तु संयमित होकर उस पदार्थ का भोग करना चाहिये यही इस भावार्थ का तात्पर्य है। कितनी मर्मस्पर्शी यह शिक्षा

गृहस्थ जीवन के लिये है। पदार्थों के अत्यधिक उपभोग से इन्द्रिय-तृप्ति नहीं होती, किन्तु उसकी प्राप्ति की इच्छा में अभिवृद्धि होती है। अतः मनु महाराज ने ठीक लिखा है—

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति,
हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते ॥ मनु० २-९४ ॥

अर्थात् इच्छाओं की जितनी पूर्त्ति की जायेगी इच्छायें उतनी ही बढ़ेंगी कम नहीं होंगी जैसे आग में घी डालने से आग और बढ़ती है, घटती नहीं। इन्द्रिय लोलुप बने रहते हुए कोई भी व्यक्ति अपने आपको स्वतन्त्र नहीं कह सकता वह तो इन्द्रियों का दास है।

ज्ञानेन्द्रियों में स्वादेन्द्रिय रसना जिह्वा बड़ी प्रबल है। यह न जाने कहाँ-कहाँ हमें खींचकर ले जाती है। अहर्निश हम इस विचार में रत रहते हैं कि इस स्वादेन्द्रिय को तृप्त करने के लिए कौन से नये-नये ढ़ंग से स्वादु व्यंजन तैयार किये जायें। इतना ही नहीं, स्वाद के पीछे खाद्य अखाद्य किसी भी वस्तु का विचार नहीं है। माँसाहार का अधिक से अधिक प्रचार इस स्वाद लिप्सा का ही विशेष रूप से परिणाम है। मैं नहीं मानती कि मेरे देश में अण्डों का प्रचार विटामिन प्राप्त करने या खाद्य-समस्या को हल करने के लिए हो रहा है। हाल के इग्लैण्ड के डाक्टरों की रिसर्च ने यह सिद्ध कर दिया है कि 'अण्डे हाई ब्लड प्रेशर, दिलकी बिमारी, पथरी आदि भयंकर रोगों की जड़ हैं, इनके बिना हम अधिक स्वस्थ रह सकते हैं' पुनः यह कहना कि हम विटामिन प्राप्त करने के लिये अण्डों का प्रयोग करते हैं गलत है। खाद्य समस्या के लिये भी इसका प्रयोग सम्भव नहीं क्योंकि प्रत्येक शाकाहारी की अपेक्षा मांसाहारी उससे अधिक अन्न एक बार में खा लेता है अतः बचत नहीं हुई। मैक्सिको विश्वविद्यालय के जीव-विज्ञान विभाग द्वारा अभी हाल ही में यह रिसर्च हुई है कि 'मछली, मुर्गी की अपेक्षा विभिन्न प्रकार के कीड़े मकोड़ों में अधिक प्रोटीन पाया जाता है।' प्रोटीन पाया जाये या नहीं किन्तु

ऐसा लगता है कि स्वाद के लोभी जन अब निश्चित ही यदि छोटे कीड़े, मकोड़ों, खटमलादि में विशेष स्वाद मिला तो इनका प्रयोग प्रारम्भ कर देंगे। माँस के अत्यधिक प्रचार का इस समय एक और भी मुख्य कारण है—आज नारियों के उपयोगी जो पत्रिकायें हैं उनमें माँसके व्यञ्जनों की विधियों की भरमार होती है। सामिष व्यञ्जनों का बड़े आकर्षक टीप-टाप के साथ विवरण छपा होता है। स्त्रियाँ प्रायः ऐसी पत्रिकाओं को देखकर अपनी रसोई-रसवती को आमिष गृह बनाती जा रही हैं। माँस का बेतहाशा प्रचार बढ़ रहा है, चरित्र गिर रहा है, क्रूरता बढ़ रही है पर इन पत्रिकाओं पर रोक लगाने वाला कोई नहीं। घरेलू शिक्षा माताओं के द्वारा कन्याओं को न मिलने का यह दुष्परिणाम है जिससे आर्य ललनायें भी अछूती नहीं हैं। आहार के इस अनाचरण से निष्ठुरता, नृशंसता नई पीढ़ी में अधिक से अधिक दृष्टिगोचर होती जा रही है जो कि घोर चिन्ता का विषय है। जीवन में सादा भोजन सादी स्वच्छ पोशाक प्राप्त करने के लिए नैतिक अनैतिक सभी उपायों को अपनाने की कदापि आवश्यकता नहीं होती, किन्तु जब हमारी आवश्यकतायें असीम रूप धारण करती जाती हैं तो जीवन का उद्देश्य ही केवल कमाई रह जाता है चाहे वह किसी भी तरीके से हो।

केवल जिह्वा के इस चस्के में फँसी हुई स्त्रियों के कारण कई परिवार ही नष्ट होते मैंने स्वयं देखे हैं। घर में चार पैसे बचाकर रखने पड़ते हैं, इसके बिना परिवार नहीं चल सकते। किन्तु चटोरे व्यक्ति के द्वारा यह कार्य असंभव है। सहस्रों रुपयों की गाढ़ी कमाई को कुछ मासों में 'दही-भल्ले' आदि खाकर समाप्त करने वाली स्त्रियाँ न पति की सच्ची मित्र हो सकतीं न परिवार हितैषिणी। निश्चित ही उन्हें ऐसे पैसे प्राप्त करने के लिये सोये हुए पति की जेब से चोरी करनी पड़ती है। वे इस क्रिया में निपुण भी हो जाती हैं। यह कितने दुर्भाग्य की बात है कि इस लोलुपता के पीछे अपना

निश्छल हृदय अर्पित न करने के कारण वे पति-प्रेम से सदैव के लिए वंचित रहती हैं।

खान-पान चटपटा तथा सिनेमा देखने की आदत जिस घर में हो समझें दुर्दिनों की काली छाया मंडरा रही है जो कि भविष्य में आगे की पीढ़ी को तबाह कर देगी। सचमुच, उस घर के भाग्य बिलकुल फूट गये हैं जहाँ ऐसी गृहिणीं हो ऐसा समझना चाहिये।

स्त्रियों के समान पुरुष वर्ग के इस दोष से भी परिवार का नाश अवश्यम्भावी है। सब्जी में तनिक से नमक की कमी या अधिकता हो जाने पर क्रोध में एक दूसरे की जान जाते हुए भी परिवार में सुना गया। यह सब जिह्वा की लोलुपता का ही तो परिणाम है। इच्छा की पूर्त्ति न होने पर क्रोध की उत्पत्ति होती ही है। अत एव परिवार में सुख सन्तोष एवं सर्व प्रकारेण शान्ति लाभ करने के लिए गृह नारी को 'उपजिह्विका' (अनुकूल रसना वाली) बनना चाहिए यही मन्त्र का कथन है॥

—:०:—

दिशायें एवम् दिग्पाल

स्त्री एवं पति के लिए एक बहुत सुन्दर उपमा प्रस्तुत करते हुए यजुर्वेद १४।१३ में कहा है—

राज्ञ्यसि प्राची दिक् विराडसि दक्षिणा दिक् सम्राडसि।
प्रतीची दिक् स्वराडस्युदीची दिगधिपत्न्यसि बृहती दिक्॥

अर्थात् हे स्त्रि! तू पूर्व दिशा के समान राज्ञी-रानी (प्रकाशयित्री) है; दक्षिण दिशा के समान विराट्—विविध प्रकार की विद्याओं की प्रकाशिका है, तू पश्चिम दिशा के सदृश सम्राट् (चक्रवर्ती राजा के समान) है, तू उत्तर दिशा के समान स्वराट् (स्वयमेव प्रकाशमान) है, और तू ऊपर नीचे की दिशाओं के समान अधिपत्नी घर में अधिकार को प्राप्त हुई स्त्री के समान है अतः तू सबको सन्तुष्ट कर।

मन्त्र में छहों दिशाओं के विशिष्ट शुभ गुण एवं सौन्दर्यबोध को नारी के स्वभाव में उद्भासित करते हुए उसे 'दिशाओं' की उपमा दी है।

(१) दिशायें चारों ओर अभिव्याप्त हैं। नारी जाति का कार्यक्षेत्र भी व्यापक चहुंमुखी होना चाहिए। नारी घर में आदर्श पत्नी एवं ममतामयी माँ है तो बाहर भी वह एक महत्त्वपूर्ण नागरिक है। सुसंस्कृत समाज बनाने के लिए उसकी सेवाओं की समाज को बड़ी आवश्यकता है यह नहीं भूलना चाहिए।

(२) अपने-अपने स्थान पर सभी दिशायें समवस्थित हैं, दृढ़ हैं; स्थिर हैं। यही दृढ़ता एवं स्थिरता नारी जाति का भूषण होना चाहिए। चपलता एवं चंचलता शुभलक्षणा स्त्री के गुण नहीं हैं।

(३) भूले-भटके हुए व्यक्ति को उंगली उठाकर दिशाओं द्वारा ही बोध कराया जाता है कि 'अमुक दिशा में जाओ तो तुम्हारा गन्तव्य स्थान मिल जायेगा' उस निर्देश के अनुसार वह चलता है और उसे अपना गन्तव्य लक्ष्य प्राप्त भी हो जाता है। इसी प्रकार विनयविद्या-

सम्पन्ना स्त्री जाति भी अन्धकार में फँसे भूले-भटके हुए प्राणियों को सत्य मार्ग का बोध कराने वाली है, अतः उसे 'दिशा' की उपमा दी गई।

गृहस्थ जीवन में पति-पत्नी को किन समानान्तर योग्यताओं को धारण करना चाहिए इस विषय में एक स्पष्ट चर्चा यजुर्वेद १५।१० से १४ तक पाँच मन्त्रों में आती है जो देखने योग्य है—

राज्ञ्यसि प्राची दिग्वसवस्ते देवा अधिपतयोऽग्निः ॥१५।१०॥

हे स्त्रि ! तू प्राची दिशा की राज्ञी है और तेरा पति वसु अग्नि आदि के समान देदीप्यमान है।

विराडसि दक्षिणा दिग्रुद्रास्ते देवा अधिपतय इन्द्रः ॥ १५।११॥

हे स्त्रि ! तू दक्षिण दिशा के समान विराट् है तो तेरा पति रुद्र इन्द्र के समान है।

सम्राडसि प्रतीची दिग् आदित्यास्ते देवा अधिपतयः वरुणः॥१५।१२॥

हे स्त्रि ! तू प्रतीची दिशा के समान सम्राड् है तो तेरा पति आदित्य के समान तेजस्वी है।

स्वराडस्युदीची दिक् मरुतस्ते देवा अधिपतयः सोमः ॥१५।१३॥

हे स्त्रि ! तू उत्तर दिशा के तुल्य स्वराट् है एवं तेरा पति मरुत् वायु (वेगशील) देवता तुल्य है।

अधिपत्न्यसि बृहती दिग् विश्वे ते देवा अधिपतयो बृहस्पतिः।
॥ १५।१४ ॥

हे स्त्रि ! तू ऊपर नीचे की दिशाओं के तुल्य अधिपत्नी गृह की अध्यक्षा है एवं तेरा पति सब देवों के तुल्य है।

उपर्युक्त मन्त्र खण्डों पर विचार करने से पता चलता है कि वेद का यही आशय है कि पति-पत्नी में पर्याप्त योग्यता, क्षमता, तुल्यता होनी चाहिये। कोई भी स्त्री अपने से हीन गुणों वाले पति को वरण नहीं करना चाहती, तो इसी प्रकार पुरुष को भी चाहिये कि अपनी

योग्यता से कुछ समान स्तर रखने वाली स्त्री से विवाह करे, ताकि सन्तति निर्माण कार्य भली प्रकार हो सके। आजकल डिग्रियों का बोल-बाला है। ऐसे लड़के लड़कियाँ प्रायः सर्वत्र देखने को मिलेंगे जो वास्तविक गृहस्थ जीवन के गुणों से शून्य, किन्तु बड़ी-बड़ी डिग्रियों को ही महत्त्व देते हैं, ऐसी स्थिति में सुख तो मृग-मरीचिका बन गया। सब गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने की दौड़ लगा रहे हैं पर जहाँ जाना है वहाँ के आचार व्यवहार का पता ही नहीं। सोचा, गृहस्थी तो नौकरों के बलपर चला लेंगे ये डिग्रियाँ 'शो केस" की सजावट बनी रहेंगी और वास्तविकता यह हुई कि वे पति-पत्नी भी विलासिता एवं फैशन की प्रतिमूर्ति बने हुए चलते-फिरते शो-केस स्वयं ही बन गये। पति ने पत्नी को हाथ न हिलाना पड़े इसलिए चार-पाँच नौकर रख दिये, इसलिये नहीं कि उसकी 'अगाध' पत्नी भक्ति थी बल्कि इसलिए कि कहीं हाथ-पैर हिलाने से इसकी रूपराशि कुम्हला न जाये। छिः! स्त्री सौन्दर्य का कितना घृणित आकलन यह है। पुरुष नारी के बाह्यरूप सुधा का इतना लोभी बन चुका है कि उसे प्रतिक्षण उसकी बाह्य सजावट, शृंगार, प्रसाधन का ध्यान है। वह उसके साथ ऐसी उन्मत्तता का व्यवहार करता है जैसे किसी सजी-सजाई जीती-जागती प्लास्टिक की गुड़िया के साथ। यह मानना होगा कि आज की जग-मगाहट वाली दुनियाँ में जब पुरुष ने नारी के दिव्य गुणों पर जिसके कारण वह देवी, शक्ति, निर्मात्री समझी गई थी, ध्यान देना छोड़ दिया तो वह भी पुरुष को सन्तुष्ट करने के लिये विलासिता की पुतली बनकर रह गई, जिसका परिणाम यह हुआ कि अगली पीढ़ी विनाश के कगार पर आकर खड़ी हो गई।

इसीलिए तो मनु महाराज ने कहा है—

एताश्चान्याश्च लोकेऽस्मिन्नपकृष्टप्रसूतयः।
उत्कर्षं योषितः प्राप्ताः स्वैः स्वैर्भर्तृगुणैः शुभैः ॥९।२४॥

अर्थात्-यदि स्त्रियाँ दुष्टाचारयुक्त भी हों तथापि इस संसार में बहुत स्त्रियाँ अपने-अपने पतियों के शुभगुणों से उत्कृष्ट हो गई हैं, होती हैं, और होंगी भी। इसलिए यदि पुरुष श्रेष्ठ हों तो स्त्रियाँ श्रेष्ठ और दुष्ट हों तो दुष्ट हो जाती हैं। इससे प्रथम मनुष्यों को उत्तम होके अपनी स्त्रियों को उत्तम रखना चाहिए। (देखो-संस्कारविधि में गृहाश्रम विधि प्रकरण)

इस प्रकार स्पष्ट है कि स्त्रियों को शुभगुणयुक्ता रखने के लिए पुरुषों का शुभगुण सम्पन्न संयमी सदाचारी होना अत्यन्त आवश्यक है। नारियाँ दिशायें हैं तो दिग्पाल-पति भी तेजस्वी दृढ़ कर्मठ एवं सादगी सम्पन्न हों तभी सद्गृहस्थ बन सकता है। आज गुणवती सीधी सरल, सादगी सम्पन्न कन्याओं को इस प्रकार का घर वर मिलने दुर्लभ हो गये हैं या वे स्वयं ऐसे उचित वर के अभाव में अविवाहित रहना अधिक पसन्द करने लगी हैं। क्या यह दुर्भाग्य बात नहीं ?

आज कल्चर्ड बनने का ऐसा शौक सवार हुआ है कि पहले माता पिता अपनी घरेलू सीधी-सादी संस्कृतिनिष्ठ शिक्षाओं को अपने कॉलिज जाने वाले सन्तानों को बताकर अगाह कर मानव बनाने का सुप्रयत्न किया करते थे परन्तु आज के युग में अन-कल्चर्ड कहे जाने वाले वही पुराने सीधे-सादे आचार विचारों वाले माता पिता अपनी फैशन परस्त दूषित सन्तान से रहन-सहन का नया तौर-तरीका सीखते हुए सुसभ्य कहलाने की कोशिश में लगे हैं। गाँव की 'सादा जीवन उच्च विचार' वाली देवियाँ बड़े-बड़े शहरों में जाकर इसी होड़बाजी में दिन रात व्यस्त हैं। वे 'लिपिस्टिक लगाना जूड़े बाँधना और न जाने क्या-क्या अपनी सन्तानों से सीखती हैं ताकि उन्हें कोई असभ्य न कह सके। वस्तुतः यह अग्नि हमारे परिवारों को भस्मसात् कर देगी, यह आँधी सब कुछ समाप्त कर देगी। हमारी सांस्कृतिक परम्परायें जिसमें एक रहस्य था

कल्चर के नाम पर मिट जायेंगी इसलिए आज सबको सावधान होना है केवल अन्ध-विश्वास का गढ़ ही ढाने की आज जरूरत नहीं है न ही जरूरत है केवल नारी जागरण के नारों की, बल्कि जरूरत है उस आदर्श सन्तति-निर्माण की जिसमें कूट-कूट कर रोम-रोम में संस्कृतिनिष्ठा की ज्वाला समाई हो, जो किसी भी देश या समाज में जाने पर भी कभी न उतरे, न क्षीण हो।

—०—

वैदिक धर्म में नारी का स्थान

वैदिक धर्म में नारी का स्थान पुरुष के बराबर नहीं बल्कि बहुत ऊँचा है। इस प्रकार आज जो नारी के लिये पुरुष के समान अधिकार की प्राप्ति के नारे लगाये जाते हैं—वह "सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डितः" के रूप में समझने चाहियें। मध्ययुग में जब नारी अपने अधिकारों के लिये अत्यन्त कातर एवं उत्पीड़ित दीन-हीन बन गई तो इस युग में नारी उद्धार करने वाले लोगों ने समानता के अधिकार की गुहार लगाई। वस्तुतः नारी का स्थान तो पुरुष से सदैव ऊँचा एवं महत्वपूर्ण रहा है।

वेद में नारी को सुख का द्वार (समाजरूपी भवन का) ऋ० ५।५।५ में कहा है, उसे पुण्यगन्धा ऋ० ७।५५।८, शिवा यजु० ११२७, मही यजु० ४।१, सुदुधा यजु० २८।१६, सुलाभिका ऋ० १०।८६।७ आदि शब्दों से भी सम्बोधित किया गया है। ये शब्द पुकार-पुकार कर इस बात को सिद्ध करते हैं कि समाज में नारी अति मंगलमयी एवं महिमा सम्पन्न है। नारी उत्तम समाज के सृजन की प्रक्रिया का मेरुदण्ड है। योग्य सुसंस्कृत सन्तान उसके आँचल में ही पलकर बनते हैं। माता सन्तान की प्रथम गुरु है। गर्भावस्था से लेकर पाँच वर्ष तक जो प्रभाव एवं संस्कार सन्तान पर माता डाल देती है वह कोई विश्वविद्यालय भी नहीं कर सकता। इसी मूल थाती को लेकर वह जीवन पर्यन्त विकसित होता है। इससे स्पष्ट है कि नारी का सुशिक्षित होना कितना आवश्यक है तथा समाज में उसका इसीलिये ऊँचा स्थान है कि वह निर्माण करती है। ऋग्वेद २।४१।१६ में कहा है—

अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति।
अप्रशस्ता इव स्मसि प्रशस्तिमम्ब नस्कृधि ॥

अर्थात्—"हे मातः! तुम माताओं में श्रेष्ठ गुण वाली (अम्बितमे), सूक्ष्म विद्या का उपदेश करने हारी पण्डिता अतिशय दिव्य गुण वाली हो। हम अप्रशस्त लोगों को आप अपने विद्या एवं विज्ञान से पूर्ण प्रशस्त कीजिये।" इसी प्रकार की प्रार्थनायें इससे आगे के मन्त्रों में भी हैं। सन्तान के लालन-पालन के साथ-साथ सुशिक्षा का कार्य श्रेष्ठ माता ही कर सकती है अतः उससे ही यह प्रार्थना की गई।

वैदिक आज्ञा के विरुद्ध मध्ययुग में नारी अधिकार अत्यन्त सीमित कर दिये गये एवं बाल विवाह तथा सती-प्रथा आदि भयावह कुरीतियों ने समाज में जड़ पकड़ लिया जिससे नारी की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई। उस समय भी विवाह के अवसर पर यद्यपि वर-वधू से यही प्रतिज्ञा के मन्त्र पढ़ाये जाते थे कि हम दोनों मरण-पर्यन्त एक साथ रहेंगे मरणोपरान्त नहीं अर्थात् जीवित अवस्था में साथ-साथ रहने की प्रतिज्ञा करते थे सह-मरण की नहीं तथापि पति की मृत्यु के पश्चात् बलात् बेचारी जीवित पत्नी को पति के मृतक शरीर का भी साथ देने के लिये उसे डण्डे मार-मार कर जलती चिता पर बैठा दिया जाता था। बालक-बालिकाओं का विवाह कराते समय मन्त्र वही पढ़ाये जाते थे जो युवावस्था को प्राप्त वर-वधू के लिये होने चाहियें किन्तु उनके अर्थों पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। नारी की स्थिति को पूर्ण दुर्दशा तक पहुँचाने में तत्कालीन साहित्य भी पर्याप्त सहायक बना यहाँ तक कि व्याकरण के जटिल ग्रन्थ भी नारी को घटिया वस्तु बनाने को तत्पर हो गये यह स्थिति तत्कालीन नाटक ग्रन्थों को देखकर भली प्रकार समझ में आ सकती है। व्याकरण के ग्रन्थों में 'कन्यया शोकः' (२।३।२३) 'असूर्यंपश्या राजदाराः' (३।२।३६) एवं निन्दा अर्थ को बताने के लिये 'गार्गो जाल्मः' (४।१।१४७) आदि उदाहरणों में यह कहा कि "पितुरसंविज्ञाने मात्रा व्यपदेशोऽपत्यस्य कुत्सा"[1] इत्यादि

१. अष्टाध्यायी के 'गोत्रस्त्रियाः कुत्सने ण च' ४।१।१४७ सूत्र में 'गार्गो जाल्मः' उदाहरण में कुत्सा क्या है? यह बताने के लिये कहा गया है कि

उदाहरण हैं। इस प्रकार मध्ययुग की गिरी सिसकती हुई नारियों की स्थिति में वैदिक दृष्टिकोण यत्किञ्चित् भी कारण नहीं। वैदिक न्याय सबके लिये समान सर्वोपरि है, उसमें नारी एवं पुरुष के अधिकार तथा सम्बन्ध भिन्न नहीं। उत्तरदायित्व एवं मर्यादायें कुछ भिन्न २ हो सकती हैं कि गृहस्थ में पति-पत्नी दोनों प्रत्येक वस्तु का निर्माण करें और दोनों ही उसके समान अधिकारी हों।[1] पत्नी के यज्ञिय अधिकारों के सम्बन्ध में तो तै० ब्राह्मण में यहाँ तक कहा गया है कि 'अयज्ञोवा एषः, यो अपत्नीकः'[2] अर्थात् पत्नी के बिना यज्ञ करना यज्ञ न करने के समान ही है। भविष्य पुराण में सब आश्रमों से गृहस्थाश्रम की श्रेष्ठता तथा गृहस्थ में घर को एवं घर में भी नारियों को सबसे श्रेष्ठ कहा है उनका अनादर कभी नहीं

पितुः असंविज्ञाने—जिस अपत्य के पिता का ज्ञान न होने पर माता के गोत्र से सन्तान का व्यपदेश किया जाये यही इसमें निन्दा है। वस्तुतः यह बात तत्कालीन व्याख्याकारों की है जिनके मस्तिष्क में नारी के प्रति हीन भावना की गन्ध थी। प्रकृत उदाहरण में मातृव्यपदेश कुत्सा का कारण नहीं अपितु उस पुत्र का अपना बुरा आचरण ही है, जिसके कारण उसे कहा जा रहा है कि अरे! तू अमुक गार्गी नाम्नी विदुषी का पुत्र है फिर भी इस प्रकार है अर्थात् "तू माता की कोख को लजाने वाला" है। आगे के अष्टाध्यायी के सूत्र में भी पितृनाम से व्यपदेश होने पर भी कुत्सन में प्रत्यय का विधान है तो जैसे वहाँ पितृव्यपदेश में भी "पिता को लजाने वाला" यह कुत्सा है वैसे ही मातृव्यपदेश में भी माता को लजाने वाला यही कुत्सा है। मातृव्यपदेश नहीं। बृहदारण्यकादि प्राचीन ग्रन्थों में मातृवंश का उल्लेख उसी प्रकार प्राप्त होता है जैसे पितृवंश का।

१. सं तत् सृजेथां सह वां तदस्तु सम्पादयन्तौ सह लोकमेकम्॥
अथर्व० १२।३।३६

२. तै० ब्रा० २।२।२।६॥

होना चाहिये ऐसा बताया है[१]। आदि कवि बाल्मीकि के मुँह से कैकेयी की कर्कशता को देखकर जैसे ही निकला "धिगस्तु योषितो नाम शठाः स्वार्थपरायणाः[२]" वैसे ही तत्काल ही वे सम्हल कर बोले "न ब्रवीमि स्त्रियः सर्वाः भरतस्यैव मातरम्ः" यह उक्ति इस बात को प्रमाणित करती है कि जिस समय वेद की शिक्षाओं का प्रचार प्रसार हमारे देश में था उस समय नारी के सम्बन्ध में कितनी आदर की भावना लोगों में थी।

इस प्रकार वेद एवं वेद की परम्पराओं मर्यादाओं का पालन करने वाले युग के आधार पर यह भली प्रकार कहा जा सकता है कि राष्ट्र के बनाने में नारी की सर्वोत्कृष्ट भूमिका है[३]। नारी की उत्तम अवस्थिति के लिए जहाँ वेद के वचन शाश्वत सत्य के रूप में अवस्थित हैं, वहाँ ऐतिहासिक पृष्ठभूमि के रूप में सहस्रों उदाहरण भी उपलब्ध हैं, अतः हमें आज के युग में उन वचनों से सही दिशा प्राप्त कर समाजोत्थान की ओर बढ़ना होगा।

—:०:—

१. चतुर्णामाश्रमाणां हि गृहस्थः श्रेष्ठ उच्यते। गृहस्थाच्च गृहं श्रेष्ठम् गृहाच्च श्रेष्ठवताः स्त्रियः॥ जामयो यत्र पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः। यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते विनश्यत्याशु तद्गृहम् (भविष्य पु० उ०प० ४ अ० १७१, २०४)

२. वा० रामायण अयोध्या का० १२।१००।

३. पुरन्धिः योषा (यजु० २२।२२)

विषूचिका

यह एक तथ्य है कि ऋषि दयानन्द ने अपने वेदभाष्य में व्याकरण एवं निरुक्त प्रक्रिया को सर्वाधिक महत्त्व देते हुए शब्दार्थ प्रस्तुत किये हैं पुनरपि यह कहना असंगत न होगा कि शब्दार्थं प्रस्तुत करने में यास्क की निर्वचन प्रक्रिया को आधार बनाते हुए भी ऋषिवर उससे कहीं आगे निकल गये हैं। ऋषि के समक्ष उनका अद्भुत वेदार्थं ज्ञान लहरा रहा था, अतः यास्क प्रतिपादित निर्वचन प्रक्रिया उनके वेदभाष्य में प्रमाणभूत आधार-शिला तो थी पर इयत्ता अवधारण नहीं। ऋषि ने सहस्रों शब्दों के व्याकरण-संगत युक्ति-युक्त ऐसे निर्वचन प्रस्तुत किये हैं कि जिनका मूल निरुक्त में नहीं है एवं वे निर्वचन ऋषि की सूझ-बूझ के प्रदर्शन के साथ-साथ मन्त्र के रहस्य को अच्छी प्रकार उद्घाटित करने वाले हैं, ऐसा ही एक शब्द :पाठकों के कौतूहलार्थं यहां प्रस्तुत किया जा रहा है—

(१) विषूचिका —यजु० १९।१० में 'विषूचिका' शब्द आया है। संस्कृत में विषूचिका 'हैजा' रोग विशेष को कहते हैं। यह शब्द हैजा रोग का वाचक क्यों है? ऐसी कोई निरुक्ति शब्दकोशों में कहीं नहीं प्राप्त होती। आप्टे कोश में विषूचिका शब्द को 'सूच पैशुन्ये' धातु से ण्वुल् करके सिद्ध किया है जो अर्थदृष्टया अयुक्त है। आयुर्वेद के ग्रन्थों में यह शब्द विषूचिका विसूचिका दोनों प्रकार से प्राप्त होता है जो चिन्त्य है। विषु निपात मानके इस शब्द की व्युत्पत्ति करने पर विषूचिका ही युक्त होगा।

उव्वट ने अपने भाष्य में इस शब्द का अर्थ किया है—"विषु-निपातो नानावचनः। अञ्चतिर्गत्यर्थः। अन्तर्व्याप्तिर्नानाञ्चना विषूचिकेत्युच्यते। विषूचिका व्याधिविशेषः।" महीधर ने भी इस शब्द पर लिखा है "विषु सर्वत्र अञ्चति गच्छति विषूची सैव विषू-

चिका रोगविशेषः। केऽणः (अष्टा० ७।४।१३) इति ङीपो ह्रस्वः।"
उव्वट महीधर की विषूचिका शब्द पर ये निरुक्तियाँ रोग विशेष हैजे को कहने के लिए संगत ही हैं। हैजे रोग में दोनों ओर से मलोत्सर्ग का होना ही उसकी अन्तर्व्यापित्ति नानाञ्चना है यही इस शब्द का हैजा वाचक होने में हेतु है पर प्रकृत मन्त्र में विषूचिका शब्द का हैजा रोग को कहने में क्या प्रयोजन है? इसकी संगति प्रदर्शित करना तो वेद के प्रति अनादर दृष्टि वाले एवं वेद में केवल यज्ञ-यागादि परक सीमित अर्थ को मानने वाले उन भाष्यकारों के क्या वश में था? यजु० १९।१० का प्रकृत सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है—

या व्याघ्रं विषूचिकोभौ वृकं च रक्षति।
श्येनं पतत्रिणᳬसिᳬहᳬसेमं पात्वᳬहसः॥

दोनों भाष्यकारों ने इस मन्त्र को व्याधिस्तुति परक मानते हुए लिखा है—विषूचिकास्तुतिः।..........पापसमूहव्याप्तेः व्याधीनाम् अधिष्ठात्र्यो देवताः सन्ति ताः प्रार्थ्यन्ते। इनके अनुसार इस मन्त्र से व्याधियों की अधिष्ठात्री देवता विषूचिका रोग की स्तुति की जा रही है। बलिहारी है इन भाष्यकारों की बुद्धिमत्ता को जिनके यहाँ रोग की भी अधिष्ठात्री देवता होती है, और उनकी स्तुति की जाती है।

इस मन्त्र का अर्थ करते हुए विषूचिका शब्द का ऋषि दयानन्द ने ग़जब ही अर्थ किया है—"विषूचिका = विविध अर्थों की सूचना करने हारी राजा की रानी"। अर्थात् राज्य की विविध प्रकार की गुप्त खबरों को अपनी चतुरता से जानकर जो राजा को इन बातों से सूचित करके राज्य कार्य में विशेष सहयोग प्रदान करती है, ऐसी चतुर योग्य रानी विषूचिका शब्द से विभूषित होगी। ऋषि की इस व्युत्पत्त्यनुसार वि पूर्वक सूच धातु से ही ण्वुल् प्रत्यय मानना होगा। 'अनेकार्थत्वाद् धातूनाम्' के अनुसार यहाँ "सूच" भी

पैशुन्य = चुगली अर्थ में नहीं अपितु प्रशंसापरक सूचना देने अर्थ में है ऐसा जानना चाहिए। शब्दकोष एवं अन्य भाष्यकार कोई भी विषूचिका शब्द के हैजा अर्थ से आगे नहीं जा सके, पर ऋषिवर की यह अनोखी व्युत्पत्ति हमें वास्तविक वेदार्थ तक पहुँचा देती है। सम्पूर्ण अर्थ इनके वेदभाष्य में देखें।

प्रसङ्गानुसार पाठक एक शब्द और देखें—

(२) "उपजिह्विका"—यह शब्द भी आयुर्वेद के ग्रन्थों में रोग-विशेषवाचक है। तद्यथा चरकसंहिता में कहा—"जिह्वोपरिष्टा-दुपजिह्विका स्यात्, कफादधस्तादधिजिह्विका च" (चिकित्सास्थान १२।७६) अर्थात् कफ के कारण जिह्वा के ऊपर जो कड़ी गांठ सी बनती है वह उपजिह्विका" और जो जिह्वा के नीचे बनती है वह "अधिजिह्विका" रोग विशेष है। चरक संहिता १८।२१ में पुनः कहा है—

यस्य श्लेष्मा प्रकुपितो जिह्वामूलेऽवतिष्ठते।
आशु संजनयेच्छोथं जायते ऽस्योपजिह्विका॥

अर्थात् जब कफ कुपित होकर जिह्वा की जड़ में एकत्र होकर सूजन उत्पन्न कर दे उसे उपजिह्विका कहते हैं।

आयुर्वेद के ग्रन्थों के अतिरिक्त संस्कृत के लौकिक एवं वैदिक दोनों ही ग्रन्थों में उपजिह्विका शब्द दीमक के अर्थ में आया है। यास्क ने भी 'उपजिह्विका उपजिघ्र्यः' निरु० ३।२० अर्थात् जो सूँघने में विशेष पटु हो ऐसी कीटिका (दीमक) अर्थ किया है। उव्वट महीधर ११।७४ एवं सायण ऋ० ८।१०२।२१ तथा दुर्गाचार्य सभी ने उपजिह्विका का दीमक अर्थ मन्त्रार्थ में प्रदर्शित किया है, किन्तु ऋषि दयानन्द यजु० ११।७४ के मन्त्र का अर्थ करते हुए उपजिह्विका शब्द का इन सबसे भिन्न किन्तु युक्तियुक्त अर्थ लिखते हैं—

उपगता अनुकूला जिह्वा यस्याः सा उपजिह्विका अर्थात् जिसकी

जिह्वा=स्वादेन्द्रिय अनुकूल वश में हो जो लोलुप न हो ऐसी स्त्री उपजिह्विका हुई।'[1] यहाँ गत शब्द का लोप करके मध्यमपदलोपी समास ऋषिवर ने दिखाया है। इस प्रकार ऐसी सुसंगत विभिन्न व्युत्पत्तियों को दिखाकर ऋषिवर ने मन्त्रार्थ को बहुत व्यापक बना दिया।

जिन मन्त्रों के सायण उव्वट आदि भाष्यकारों ने अत्यन्त बीभत्स कुत्सित अर्थ किये थे उन्हीं का स्वामी जी ने मन्त्रगत किसी शब्द की अनोखी पकड़ करके समूचे मन्त्रार्थ को ही उलट दिया, एक दिव्य नूतन प्रकाश प्रदान किया। जिस मन्त्र का उव्वट महीधरादि ने पशु के काटने परक अर्थ किया उसी मन्त्र का अर्थ स्वामी दयानन्द ने पशुरक्षा परक किया। उदाहरणार्थ यजुर्वेद के २४ वें अध्याय (जहाँ ६०९ पशुओं के नाम आए हैं) के सम्पूर्ण मन्त्रों का अर्थ देखें। यहाँ विभिन्न प्रकार के पशु किस-किस गुण वाले होते हैं तथा किस प्रकार ये हमारे लिए उपयोगी हैं ये अर्थ ऋषि दयानन्द के भाष्य से जहाँ उपलब्ध होता है वहीं ये सब पशु अश्वमेधीय हैं, इनकी बलि यज्ञ के समय देवता के नाम पर कैसे-कैसे चढ़ा देनी चाहिए यही विवरण उव्वट महीधर के भाष्य से यहाँ प्राप्त होता है।

वेदों के सहस्रशः लुप्त एवं अप्रकटित रहस्य ऋषिवर की भाष्यशैली को जान एवं समझकर उपलब्ध किये जा सकते हैं, आवश्यकता मूल दृष्टिकोण को समझ लेने की है।

—:०:—

१. इस विषय में पर्याप्त विचार पूर्वलिखित 'उपजिह्विका' पृष्ठ १२० लेख पर हो चुका है।

स्तोमपृष्ठा

अपने देश में नारी की दुर्दशा का जितना बड़ा इतिहास उपलब्ध हो सकता है, उतना पुरुषों का नहीं। यद्यपि 'नारी पूजा' इस देश का एक सिद्धान्त एवं ध्येय रहा है पर पूजा शब्द का तात्पर्यार्थ जब प्रस्तर-मूर्तियों में नत-मस्तक होना, नहला-धुला कर भोग लगा कर छुट्टी पा लेना संभावित हो गया तो बेचारी चेतन मूर्ति के सम्बन्ध में नारीपूजा का तात्पर्य भी मध्ययुग में ऐसा ही कुछ हो गया। अतीत की सीता-सावित्री, दुर्गा आदि की नाम मात्र जप कर पूजा हुई किन्तु पुनः इस युग में सीता, सावित्री को जन्म देने का कोई उपाय नहीं किया गया। पण्डितों धर्माचार्यों ने 'स्त्रीशूद्रौ नाधीयाताम्' जैसी अनर्गल व्यवस्थायें तक नारी के लिये बाँध दीं। ऐसी मूढ़ता की बातें मानने पर तो सचमुच स्त्री का स्वरूप एक मूक पशु के समान बन गया। वेद में इन अनर्गल प्रलापों से भिन्न स्पष्ट शब्दों में नारी को वेद पढ़ने का अधिकार दिया गया है। यजुर्वेद १५।३ में नारी को 'स्तोमपृष्ठा' कहा है जिसका अर्थ है—

१—स्तोमाः पृष्ठा ज्ञापयितुमिष्टा यस्याः सा, अर्थात् इष्ट स्तुतियों (मन्त्रों) की जिज्ञासा है जिसको वह स्त्री।" तात्पर्य यह हुआ कि स्तुति परक वेद मन्त्रादिकों को जानने की इच्छा नारी में विद्यमान होनी चाहिये। अर्थात् उसे वेद पढ़ना चाहिये। स्तोमपृष्ठा शब्द का द्वितीय अर्थ यह भी सम्भव है—

२—स्तोम (वेदमन्त्र) पीठ में हैं जिसके अर्थात् वह स्त्री जो सदैव स्वाध्याय हेतु वेद की पुस्तकों को अपनी पीठ पर रख कर ही चलती है। चलते समय अन्य सामान के साथ वेद भी रखना कभी नहीं भूलती। इस प्रकार "स्तोमपृष्ठा" यह शब्द पुकार-पुकार कर कहता है कि नारी वेद पढ़ने के अधिकार से कदापि वञ्चित नहीं।

वास्तव में जो नारी को वेद पढ़ने से वञ्चित करने की बात करते हैं, मानों वह अपनी अन्त्येष्टि की सूचना एवं अपने कुल परिवार तथा समाज की मृत्यु का निमन्त्रण देते हैं। समाज में ऐसी मूर्खता फैलाने का कारण उनका स्वाध्याय से शून्य होना ही है। यजुर्वेद का प्रकृत सम्पूर्ण मन्त्र इस प्रकार है---

षोडशी स्तोमऽओजो द्रविणं चतुश्चत्वारिंश स्तोमो वर्चो द्रविणम्। अग्नेः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे अभिगृणन्तु देवाः। स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणा यजस्व ॥१५। ३॥

इस मन्त्र का देवता "दम्पती" है। यहाँ बताया है कि सोलह कलाओं से युक्त स्तुति के योग्य पराक्रमी चवालीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य को धारण करने वाला तथा दूसरों के पदार्थों की भोग की इच्छा न रखने वाला, अग्नि के समान तेजस्वी जो पुरुष है उसकी तथा (ताम्) ऐसी उत्तम स्त्री की सब प्रशंसा करें एवं (घृतवती स्तोमपृष्ठा इह सीद) तेजस्विनी स्तोमपृष्ठा नारी इस गृहस्थाश्रम में स्थित हो और वह (अस्मे) हमारे लिये (प्रजावत्) बहुत सन्तानों एवं (द्रविणा) धन को (आयजस्व) दिया करे। गृहस्थाश्रम के स्तम्भरूप पति-पत्नी यहाँ किस प्रकार होने चाहियें यही बताते हुए नारी के स्तोमपृष्ठात्व गुण की ओर संकेत किया है।

नारी शिक्षा के शत्रुओं द्वारा जब नारी से शिक्षा का अधिकार छीन लिया गया तो नारी बेचारी दस गज कपड़ों में लिपटी सामान की पोटली जैसी बन कर रह गई। बंगाल में तो विशेष रूप से आठ दश वर्ष की बच्ची का विवाह चालीस पचास वर्ष के अधेड़, जिसकी प्रथम स्त्री मर गई हो ऐसे पुरुषों के साथ आमतौर पर किया जाता रहा। विवाह हो जाने पर यदि वह मासूम बच्ची उस नर पशु से दूर भागे तो मात्र इस अपराध में कितनी बच्चियों की खोपड़ी का चूरमा पति एवं सासों ने बना दिया, उन्हें जीवित मार दिया गया, यह सब अलिखित इतिहास की कहानियाँ हैं। मध्य युग में अपनी ब्याहता पर जुल्म ढाना, मारना पीटना तो पुरुष अपना जन्मसिद्ध

अधिकार समझता रहा। कोई यदि अपने पशुओं को पीटे तो बाहरी लोग उसके इस कार्य में हस्तक्षेप कर सकते थे परन्तु अपनी स्त्री को पीटता देखने पर अगल बगल वालों का मात्र इतना कह कर कि "अमुक अपनी स्त्री को ही तो पीट रहा है" मुख मोड़ लेना पर्याप्त था। जो सास जीवन भर दुःख की चक्की में अनवरत पिसती रही वहीं सास अपनी पुत्रवधू के प्रति अत्यन्त निष्करुण होकर उसे भी दुःख की चक्की में पीसने को उत्कण्ठित लालायित होकर उद्यत रही। मानों यह दुखों का भारी बोझ पीढ़ी दर पीढ़ी बाँटते जाने के लिये ही है, इसकी परम्परा अजस्र है। सास एवं ससुर जो किसी भी विवाहिता स्त्री को जन्म देने वाले माता-पिता के समान ही होते हैं वे ही इस अभागिन के प्रति इतने निष्ठुर हो जायें? संस्कृत में श्वसुर एवं श्वश्रू की अत्युत्तम व्युत्पत्ति उपलब्ध होती है जो इस प्रकार है—"आशु आप्नोति जामाता वधू वा यं यां वा[1]" अर्थात् जिसकी गोद में जन्म न लेने पर भी विवाह होते ही पुत्र एवं पुत्री के समान दामाद या वधू अधिकार जिसके प्राप्त करते हैं उसको श्वसुर एवं श्वश्रू कहते हैं। यह व्युत्पत्ति सिद्ध करती है कि वधू का मान श्वशुर-गृह में पुत्री से भी बढ़ कर होना चाहिये।

जिन मूढ़मतियों ने स्त्री शिक्षा का विरोध किया उन्हें भी आज पता लग चुका है कि "हमारी इस दुर्दशा का कारण स्त्री अशिक्षा ही है।"

ऋषि दयानन्द के इस युग में जब नारियों में वेद का प्रचार हुआ तो पग्गड़धारी पण्डितों की आँखें खुली की खुली रह गईं। उनके वेद पढ़ने में तो ये अविद्यामित्र रोक लगाकर बैठे रहे पर उन्हीं के घर के पुत्र, पुत्रियाँ, वधुयें जब म्लेच्छ कही जाने वाली आंग्ल भाषा की शिक्षा लेने स्कूल कालेजों में पहुँचने लगीं तो उन्हें ये न रोक सके। फलतः उनकी वधुयें पुत्रियाँ मेम साहिबा एवं पुत्र, नामधारी शर्मा

१. उणादि० १।४४॥

'तिवारी पाठक होते हुए भी दफ्तर के बाबू बन गये। ठीक ही है, घर के व्यक्ति के लिये जब घर का फाटक घुसने को बन्द कर दिया जाये तो वह दूसरे के घर में घुसेगा।

वेद के इस 'स्तोमपृष्ठा' शब्द के अनुसार नारी का कल्याण तभी सम्भव है जब वह पूर्ण रूपेण वेद की स्वाध्यायी बने। आज हमारी बहिनों को 'सादा जीवन उच्च-विचार' का लक्ष्य अपनाना है। वेद की शिक्षा को ही परम पीयूष समझते हुये पग बढ़ाना है। अँग्रेजियत में फँसी "ऊपर से तो सोना जैसी भीतर कोरा पीतल" की उक्ति को चरितार्थ करने वाली हजारों स्त्रियाँ आज हमें दीख सकती हैं पर स्त्री-सुधार के रूप में वेदवादिनी गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा आदि का ही नाम आयेगा। अतः उस परम लक्ष्य का ध्यान करते हुए बहिनों को वेद-पारगी बनने का पूर्ण प्रयत्न करना चाहिये।

—:o:—

ये अनमेल जोड़े

किसी भी नगर के स्वच्छ लिपे-पुते घर, सजा-सजाया ड्राइंग रूम एवं बिल्कुल अप्टूडेट दम्पती देखकर प्रत्येक को स्वाभाविक रूप से यही कल्पना हो सकती है कि 'परिवार बड़ा सुखी है, कहीं कोई पति-पत्नी के बीच में दरार नहीं है' किन्तु यह क्या ? चन्द घण्टों के साथ के पश्चात् ही यह सत्य साकार होकर सामने आ जाता है कि इनके जीवन में तो विषमतायें ही विषमतायें हैं, साम्य तो न के बराबर है। यह सुव्यवस्थित घर एवं बढ़िया पोशाक इनके दैनिक जीवन के साम्य के प्रतीक नहीं, यह सब धोखा है, लोगों को दिखाने के लिए है। यह सब विषमतायें क्यों हैं ? इसका कारण केवल एक है "परस्पर गुण, कर्म, स्वभाव का तालमेल न खाना"। गृहस्थाश्रम में सुख "टेलीविजन" या 'फ्रिज' नहीं दिया करते सुख तो विचारों के मेल से होता है। वन में जाकर राम और सीता पत्तों की शय्या बनाकर सोये, जिसको देखकर भरत का हृदय विदीर्ण हो गया और वे कह उठे—

हा हतो ऽस्मि नृशंसो ऽस्मि यत् सभार्यः कृते मम।
ईदृशीं राघवः शय्यामधिशेते ह्यनाथवत्॥

(रामायण अयो० ८८।१७)

अर्थात् – हा ! हतभाग्य ! मैं तो जीवित ही मर चुका, मैं कितना नृशंस हूं जो मेरे कारण ही सीता सहित मेरे अग्रज अनाथ के समान पत्तों की शय्या में धरती पर खुले आकाश में सो रहे हैं। किन्तु राम और सीता को इस कष्ट से कोई अन्तर नहीं पड़ा वे परस्पर सदैव प्रीतियुक्त ही वनवास में रहे, यह विचारों के मेल का ही तो परिणाम था। भोग्य सामग्री की बहुलता स्थान को सजा सँवार सकती है किन्तु मनों में तरलता उत्पन्न नहीं कर सकती। उत्तम गुणों वाली देवी को प्राप्त करने की इच्छा आज के नवयुवक की उतनी नहीं जितनी अन्य टीम-टाम वाले प्रसाधनों की। सचमुच

आज इस देश में जितनी तेजी से दुर्व्यसनों एवं चरित्र-हीनता के साधनों (टेलीविजन आदि) को फैलाया जा रहा है उनसे देश में पागल और घिनौने नवयुवक ही तो तैयार हो सकते हैं ? ऐसे लोभी एवं दुर्बलचरित्र वाले नायक गृहस्थाश्रम को क्या सुखी रख सकते हैं ?

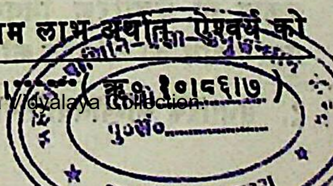
महर्षि दयानन्द ने विवाह जैसे पवित्र बन्धन के लिए गुण, कर्म, स्वभाव की ही बात सबसे मुख्य कही है, अन्य सब बातें गौण हैं। उन्होंने सत्यार्थ प्रकाश के चतुर्थ समुल्लास में स्पष्ट लिखा है—

"कन्याओं की अध्यापिकाओं के पास कुमारों की, कुमारों के अध्यापकों के पास कन्याओं की प्रतिकृति भेज देवें। जिस-जिसका रूप मिल जाय उस-उसके इतिहास अर्थात् जन्म से लेके उस दिन पर्यन्त जन्म चरित्र का जो पुस्तक हो, उसको अध्यापक लोग मँगवा के देखें। जब दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव सदृश हों तब जिस-जिस का विवाह योग्य समझें, उस-उस पुरुष और कन्या का प्रतिबिम्ब और इतिहास कन्या और वर के हाथ में देवें"।

उपर्युक्त लेख से यह भी स्पष्ट है कि विवाह सम्बन्ध स्थिर करने से पूर्व शिक्षण काल में अध्यापक अध्यापिकाओं द्वारा लिखित 'स्वभाववृत्त' (जिसके आधार पर उन्हें वर्ण प्राप्त होता है) को मिलाकर देखना चाहिये, कि इनका परस्पर गुण, कर्म, स्वभाव मिलता है या नहीं। मूढ़मतियों ने "स्वभाववृत्त" मिलाने के स्थान पर जन्मपत्री एवं कुण्डली मिलाना प्रारम्भ कर दिया और यह मंगली है, यह गौरी है कहकर अपना स्वार्थ सिद्ध करने लगे। कोई विरला आर्य ही आज "स्वभाववृत्त" शायद मिलाता हो। जाति-पाँति के झूठे बखेड़े ने भी इस गुण, कर्म, स्वभाव की बात को बहुत दूर फेंक दिया है। वस्तुतः जाति को देखकर चाहे वह योग्य अयोग्य कुछ भी हो विवाह का चुनाव करना हितकर कदापि नहीं हो सकता ? काश ! कि हम इस बखेड़े को छोड़ देते तो अनेकों गुणी युवक ऐसी कन्याओं के लिये सुलभ हो जाते जो योग्य वर के अभाव में वैवाहिक आयु को आज पार करती जा रही हैं।

अब इस गृहस्थरूपी अनमोल गाड़ी पर सवार होकर दोनों पक्षों में जिसकी प्रबलता होती है वही प्रथम काल में अपना सिक्का जमा लेता है। स्त्री के गुण, कर्म, स्वभाव के बिपरीत पुरुष जब दमन पर विश्वास रखने वाला, कठोर स्वभावयुक्त होगा तो विवाह के दस-पन्द्रह वर्षों तक इस कठोरता का सामना दुःख एवं भय के साथ भले ही कातर स्त्री कर ले किन्तु वही स्त्री पुरुष के शारीरिक दृष्टि से शिथिल होते ही उतनी प्रबलता के साथ बच्चों सहित यानी सेना सहित पति पर शास्ता बनकर शासन चलाने लगती है। इस अवस्था में पुरुष को बुढ़ापे में एकाकीपन का अनुभव करते हुए घुट-घुट कर मरना ही पड़ता हैं। इससे विपरीत अवस्था में यही स्थिति स्त्री की भी बुढ़ापे में हो सकती है? 'स्त्री की बात नहीं माननी चाहिये, उसको दबाकर रखना चाहिये' ऐसी निकम्मी बातों को मानने वालों की यही दशा होती है। जीवन के अन्तिम प्रहर में उन्हें दुःखी एकाकी एवं मनहूस जीवन ही बिताना पड़ता है। स्वामी होने के नाते पति का विशेष कर्त्तव्य हैं कि वह पत्नी के मस्तिष्क की उस परिधि तक पहुँचने की बड़ी सावधानी से चेष्टा करे, जहाँ तक उसकी विचार शक्ति काम कर रही है। उसे न समझकर आरोप प्रत्यारोप से उसके हृदय को कभी न बींधे, इससे हृदय भग्न हो जाता हैं एव सच्चा प्रेम नष्ट हो जाता है। इसी प्रकार पत्नी को भी चाहिये कि वह भी पति के साथ ऐसा ही व्यवहार करे। सब कुछ सुख के साधन घर में होते हुए भी वे पत्नियाँ घर में पक्षी की तरह फड़फड़ाया करती हैं जिनके पति 'स्त्री-दमन' पर ही विश्वास करते हैं एवं उनके वैचारिक स्तर पर कोई प्रसन्नता न प्रकट करते हुए लाञ्छना तथा आरोप से ही व्यवहार करते हैं। ऐसे लोग जब सुख के रूप में स्त्री की छाँव चाहते हैं तो मुझे बड़ा आश्चर्य होता है?

नारी को वेद में सुलाभिका[1] (उत्तम लाभ अर्थात् ऐश्वर्य को



१. उवे अम्ब सुलाभिके यथेवाङ्ग भविष्यति । (ऋ० १०।८६।७)

प्राप्त कराने वाली) एवं सुभद्रिका[1] (उत्तम कल्याण करने हारी अर्थात् लक्ष्मी) कहा है। जब वह उत्तम-उत्तम ऐश्वर्यों की प्रदात्री एवं लक्ष्मी = कल्याण कर्त्री हैं तो उसका मान-मर्दन पति के द्वारा ही किया जाना कहाँ तक उचित है ?

आज गृहस्थाश्रम में दया दाक्षिण्यादि उदात्त गुणों की न्यूनता का वास्तविक कारण यही है कि वेद की शिक्षा का जीवन में नितान्त अभाव है। भले ही आज के नव-युवक नव-युवतियाँ लम्बी-लम्बी डिग्रियाँ प्राप्त कर लें पर उन्हें क्या पता कि सद्गृहस्थ के लिए वेद के क्या पवित्र आदेश हैं। इसीलिए तो मनु महाराज ने कहा हैं—

"वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम् ।
अविप्लुतब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममावसेत् ॥"

(मनु० ३।२)

अर्थात्—अखण्ड ब्रह्मचर्य का पालन करता हुआ ब्रह्मचारी नव-युवक चारों वेदों को पढ़कर, यदि चार नहीं तो दो वेदों को पढ़कर अथवा दो भी न पढ़ सके तो कम से कम एक वेद को तो अवश्य पढ़कर ही गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे।

आज की स्थिति यह है कि कम से कम एक वेद पढ़ने की तो बात छोड़ दी जाये वेद के दर्शन भी नहीं किये गये होते। विवाह संस्कार तो एक मजाक बन कर रह गया है। बहुत से आर्य परिवारों में भी देखती हूँ कि विवाह के अनन्तर वे वर-वधू के जोड़े को बिठाकर यज्ञादि धार्मिक कृत्य कराने को तो तिलाञ्जलि दे बैठे हैं, किन्तु 'टी-पार्टी' 'रिसेप्शन' वे कदापि नहीं भूलते, यह पतन की पराकाष्ठा नहीं तो क्या है ?

इस प्रकार यह ध्रुव सत्य है कि वैदिक मार्ग पर चल कर ही सब प्रकार की वैचारिक विषमताओं को दूर किया जा सकता है एवं गृहस्थाश्रम की श्रीवृद्धि की जा सकती है।

---

१. सुभद्रिकां काम्पीलवासिनीम् (यजु० २३।१८)

